स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–22, अंक–2, माघ–फाल्गुन 2070, फरवरी 2014

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा – पृष्ठ–8

एशिया के भविष्य की धुरी भारत, चीन, जापान का त्रिकोण है। आज से पहले यह त्रिकोण कभी इतना मजबूत नहीं रहा। आने वाले वर्षों में एशिया की भू–राजनीति जापान और भारत के प्रगाढ़ संबंधों से काफी हद तक प्रभावित होगी। भारत–जापान के मजबूत होते संबंध चीन की बढ़ती दबंगई पर अंकुश लगा सकते हैं।

कवर पेज

अ नु क्र म

आवरण कथा :

चीनी कंपनियों से सुरक्षा को खतरा
– विक्रम उपाध्याय /6

भारत–जापान : दोस्ती की ताकत
– ब्रह्म चेलानी /8

सामयिकी : क्यों है निराश आज किसान
– जयंतीलाल भंडारी /10

कृषि

नीति नियंताओं की नाकामी
– देविन्दर शर्मा /12

खाद्यान्न : थाली से गायब होती दाल
– पंकज चतुर्वेदी /14

अर्थतंत्र : नाकामियों को छिपाने की एक और कोशिश
– बलवीर पुंज /16

अर्थव्यवस्था :

2014 की चुनौती : गवर्नेन्स का ग्लोबलाइजेशन
– डॉ. भरत झुनझुनवाला /18

विचार : महात्मा गांधी : एक विचार
– डॉ. विजय वशिष्ठ /20

मुद्दा : विदेशी निवेश – संसाधनों की लूट
– भारत डोगरा /24

चर्चा : एफडीआई के बंद होते दरवाजे
– प्रमोद भार्गव /26

पर्यावरण : समुद्र में घुलता जहर : भविष्य के लिए बड़ा संकट
– उमेश प्रसाद सिंह /32

सवाल : पार्टियों में सबसे बड़ा भ्रष्टाचार
– डॉ. वेदप्रताप वैदिक /34

पड़ताल :

चकबंदी की सफलता से रुकेगा पलायन
– जयवीर सिंह रावत /36

स्वास्थ्य : चिकित्सा पर्यटन का नया केन्द्र
– मुकुल श्रीवास्तव /38

पाकठनामा/4, समाचार परिक्रमा/ 28

पाठकनामा

क्या हो आरक्षण का आधार?

देश में लोकसभा चुनाव के कुछ माह ही बचे हैं। ऐसे में नेताओं की ओर से जो कुछ भी बोला जाएगा या घोषणा की जाएगी, वह चुनावों को ध्यान में रखते हुए ही की जाएगी। जब तक आदर्श आचार संहिता लागू नहीं होती, ऐसे बयान लोगों को सुनने को मिलते रहेंगे। कुछ दिन पहले आरक्षण पर कांग्रेस के एक नेता ऐसा ही बयान दिया कि जाति के बजाय आर्थिक आधार पर आरक्षण देने का सुझाव दिया। वैसे भी उनकी निजी राय पर अपेक्षित प्रतिक्रिया ही हुई है। ऐसे में इस बयान के मायने लोगों को मालूम है। वैसे भी देश में आज गठबंधन की राजनीति में एक पार्टी अपने दम पर ऐसा कोई बड़ा कदम तो उठा नहीं सकती है, न ही कर सकती है। इस मसले पर देश में व्यापक आम सहमति होनी चाहिए। भारतीय समाज में पिछड़ेपन का गरीबी से इतर जाति भी आधार है और जातीय शोषण को दूर करने के लिए अलग से उपाय होने चाहिए, इस पर आज राजनीतिक दायरे में लगभग सर्वानुमति है। लेकिन जिस रूप से आरक्षण नीति पर अमल हो रहा है, क्या वह उचित दिशा में है, इस पर अवश्य बहस हो सकती है। आरक्षण को सामाजिक न्याय का पर्याय समझने वाले राजनीतिक दलों ने जिस तरह इस मुद्दे को वोट बैंक की राजनीति में तब्दील कर दिया है, उसकी समालोचना खुद उन जातियों के हित में है, जिनके लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इस सियासत का नतीजा कई संपन्न जातियों में भी खुद को पिछड़ी घोषित कराने की होड़ के रूप में सामने आया है। वोट की चिंता में सरकारें ऐसे दावों को स्वीकार भी करती गई हैं। इस बेतुके रूझान से जाति आधारित गोलबंदी निरंतर अधिक मजबूत होती गई है।

अगर आरक्षण खत्म करना चाहते है, तो कांग्रेस सरकार पहले अंतरजातीय विवाह का कानून बनवाएं। अंतरजातीय विवाह का कानून बने। क्या सरकार ऐसा करने को तैयार है? सरकार जाति खत्म करने का कानून बनाए, दलितों को व्यापार में छूट मिले, वे उच्च वर्ग में आसानी से विवाह कर पाएं। क्या सरकार ऐसा करने को तैयार है?

सुप्रीम कोर्ट के नौ न्यायाधीशों की पीठ ने इंदिरा साहनी बनाम केंद्र सरकार के मामले में कहा कि केवल आर्थिक आधार पर किसी को आरक्षण नहीं दिया जा सकता। आर्थिक के साथ सामाजिक, शैक्षणिक जैसे आधार जोड़ने पर ही ऐसा संभव हो सकता है।

– नरेन्द्र देवांगन, पोस्ट–खरोरा, जिला–रायपुर (छत्तीसगढ़)

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 150 रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क: 15,00 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

या आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740
IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram)

उन्होंने कहा

अगर अदालत ने किसी मामले पर अपना फैसला दे दिया है तब उस पर बहस जारी रहने का कोई औचित्य नहीं है। हम नरेंद्र मोदी के मामले में अदालत के फैसले को स्वीकार करते हैं।

– शरद पवार

क्या इसे अराजकता तभी कहा जाता है जब यह सड़कों पर होती है? संसद में फैली अराजकता के बारे में क्या कहेंगे। यह सड़कों पर फैली अराजकता से कहीं अधिक खतरनाक है।

– शेखर कपूर

पिछले आठ वर्षों से लोगों का घोर विरोध, सामाजिक व मानवाधिकार संगठनों की आपत्तियों और अनेक सरकारी मान्यता प्राप्त समितियों की प्रतिकूल रिपोर्ट झेलने के बाद भी पोस्को अपने प्रोजेक्ट को छोड़ क्यों नहीं रही है।

– भारत डोगरा

आज गांधीवाद के नहीं बल्कि गांधी जी के विचारों पर आचरण करने की आवश्यकता है। गांधी जी को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके विचारों को अपने जीवन में अपनाएं एवं दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करें।

– डॉ. विजय वशिष्ठ

सरकार द्वारा हाईवे और रिसर्च में निवेश में कटौती की गई है। इससे गरीब को राहत जरूर मिली है लेकिन ग्रोथ दबाव में आ गई है और जनता बेरोजगार है। लोगों को रोजगार देने के स्थान पर अनाज बांट कर उनका वोट खरीदना कुशासन ही है।

– डॉ. भरत झुनझुनवाला

कृषि को घाटे का सौदा बनाकर हम बेरोजगारी और असंतोष को बढ़ाने का काम ही कर रहे हैं।

– देविन्दर शर्मा

संपादकीय

जनविरोधी आर्थिक नीतियां ही हैं विकास में बाधक

पिछले साल दिसंबर में जब डॉ. रघुराम राजन ने रिजर्व बैंक के गर्वनर का पदभार संभाला था तो देश में इस बात की परिचर्चा हो रही थी कि विश्व बैंक के अपने अनुभवों का लाभ उठाकर वे अर्थव्यवस्था में एक नई जान फूंक सकते है। उनके आगमन का बाजार ने स्वागत भी किया, रूपया जो प्रति डॉलर 70 के आसपास पहुंच गया था, वह मजबूत होकर 62–63 के आसपास आ गया और मुद्रा बाजार में एक स्थिरता भी दिखाई देने लगी। इसे राजन उदित के रूप में लोग परिभाषित करने लगे। कुछ विशेषज्ञों ने तो यहां तक लिख लिया कि पूर्व गर्वनर सुब्बाराव और वित्त मंत्री पी. चिदंबरम के आपसी खींचतान के कारण बाजार की यह स्थिति बनी हुई है। लेकिन सच्चाई यह है कि राजन, सुब्बाराव के पदचिन्हों पर ही चल रहे है।

रिजर्व बैंक ने 28 जनवरी को मौद्रिक नीति की तिमाही समीक्षा में एक बार फिर से रैपोरेट ही नहीं बल्कि बैंक रेट को भी 0.25 फीसदी बढ़ाते हुए उन लोगों को निराश किया है, जो इसमें कमी की आस लगाए हुए थे। इन नीतिगत ब्याज दरों के बढ़ने से मध्यम वर्ग द्वारा लिए गए उधारों पर ईएमआई ही नहीं बढ़ेगी, बल्कि उद्योगों के लिए ब्याज लागत भी बढ़ेगी। गौरतलब है कि पिछले 3–4 वर्षों से लगातार बढ़ती हुई ब्याज दरों के कारण भारत के मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा शक्ति में भारी कमी आई है।

पिछले 3 वर्षों से जीडीपी ग्रोथ की दर लगातार घटते हुए बीते साल 5 प्रतिशत ही रह गई और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों के अनुसार यह चालू वर्ष में मात्र 4.5 प्रतिशत ही रहने वाली है। मैन्युफैक्चरिंग की बात करें तो इसका प्रदर्शन सबसे खराब रहा। पिछले वर्ष में मैन्युफैक्चरिंग की ग्रोथ औसत 1.3 प्रतिशत ही रही और चालू वर्ष के पहले आठ महीनों में तो यह (–)0.2 प्रतिशत रह गई। कृषि में प्रदर्शन मौसम के मिजाज के अनुसार चलता ही है, ऐसे में सेवा क्षेत्र में भी ग्रोथ की संभावनाएं क्षीण होती जा रही है।

दरअसल अर्थव्यस्था के संभालने में रिजर्व बैंक की भूमिका सीमित है। यह सरकार पर निर्भर है कि अर्थव्यवस्था किस दिशा में चले। अपनी फिजूल खर्ची और गैरनियोजित खर्चों में भारी वृद्धि कर सरकार ने खुद ही अर्थव्यवस्था को पंगू बना दिया है। केवल कृषि की विकास दर ही सरकार को बचाए रखे हुए है। जिस देश में लगातार मुद्रा स्फीति की दर में वृद्धि हो, मंहगाई लगातार बढ़ती जाए, विनिर्माण क्षेत्र की विकास दर नगण्य या नकारात्मक हो, रोजगार बढ़ ना रहा हो, उस देश में रिजर्व बैंक क्या कर सकता है? सुब्बाराव ब्याज दर में वृद्धि का जो तर्क देते रहे है, वही तर्क राजन भी दे रहे हैं। यानि जब तक मुद्रा स्फीति की दर कम नहीं होती, तब तक रिजर्व बैंक ब्याज दर में कोई कटौती नहीं करेगा। इसलिए राजन के हाथ में कोई जादुई छड़ी है यह बात कहने वाले असफल सिद्ध हो चुके है।

एक बार फिर से अर्थव्यवस्था डगमगा रही है। पिछले 4 सप्ताह में शेयर बाजार 1000 अंक से ज्यादा टूट चुका है। रूपया फिर से कमजोर होकर 63 रूपये से ऊपर पहुंच चुका है। विदेशी मुद्रा भंडार में 1.2 अरब डॉलर की कमी आई है। हालांकि मौसमी सब्जियों के दाम में कमी आने से महंगाई थोड़ी नीचे आई है, परन्तु अर्थव्यवस्था अभी भी अवसाद में है। सरकार ने किसी भी व्यापार को कोई पैकेज देने का संदेश नहीं दिया है। उद्योग हो, सेवा क्षेत्र या आमजन, सभी में निराशा व्याप्त है। अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ भी यह मानते है कि निवेशकों का विश्वास इस सरकार पर नहीं रहा, इसलिए कोई भी बड़ी योजना या निवेश भारत में हो नहीं रहा है। सरकार खुद बड़ी योजनाओं में अब निवेश करने के लिए तैयार नहीं, सिर्फ खानापूर्ति हो रही है। हताशा का वातावरण देश को ग्रसित किए हुए है। बाजार हो या आमजन, सभी की निगाहें मई में नई सरकार के गठन पर टिकी हैं।

चीनी कंपनियों से सुरक्षा को खतरा

अमरीका यह मानता हैं कि हुवेई और जेटीई चीन सरकार के लिए जासूसी करती हैं। विदेशी तकनीक के जानकार अमरीकी के पूर्व अधिकारी जिम लेकिस का कहना है कि चीन की सरकार ही इन्हें निर्देश देती है कि इन्हें कब क्या करना है और ये वहीं करती हैं। चीन की इन दोनों कंपनियों से अमरीका पूरी तरह सजग हैं, इसलिए इनका किसी बड़ी अमरीकी कंपनी से व्यावसायिक संबंध कम है। जिन अमरीकी कपनियों से हुवेई ने कोई साझीदारी की भी है तो वहां अक्सर अमरीकी अधिकारियों द्वारा जांच कराई जाती है। पर इतनी सारी जानकारी सार्वजनिक होने के बावजूद भारत सरकार चीन की इन दोनों कंपनियों को लगातार यहां काम करने दे रही है।

■ विक्रम उपाध्याय

सावधान! चीन की दूरसंचार कंपनियां भारत के लिए खतरनाक साबित हो सकती है। इनसे राष्ट्रीय सुरक्षा को गंभीर खतरा है। भारत में काम कर रही चीन की दोनों कंपनियों, हुवेई और जेटीई दोनों पर चीन सरकार के लिए जासूसी करने के आरोप हैं। अमरीका, आस्ट्रेलिया और यूरोप के देशों ने अपने यहां प्रतिबंधित कर रखा है। भारत में भी इनके काम काज पर रोक लगाने की मांग उठती रही है, पर सरकार न जाने क्यों इस गंभीर विषय पर आंखें बंद किए बैठी रही।

पिछले दिनों जब चीनी कंपनी हुवेई ने भारत संचार निगम लिमिटेड का नेटवर्क हैक कर लिया तो सरकार जैसे नींद से जगी। दूरसंचार क्षेत्र की इस चीनी कंपनी पर हुए खुलासे की जांच के लिए एक अंतरमंत्रिमंडलीय समिति का गठन किया गया है, जिसमे गृहमंत्रालय से जुड़े लोग भी शामिल हैं।

उल्लेखनीय है कि बीएसएनएल ने आंध्रप्रदेश में लगभग डेढ़ करोड़ लाइने बिछाने का बहुत बड़ा ठेका चीनी कंपनी जेटीई को दिया है। हुवेई भी तब ठेका हासिल करने की दौड़ में शामिल थी, लेकिन कीमत के मामले में जेडीई से प्रतिस्पर्धा हुवेई नहीं कर सकी। कहने को यह कहा जा रहा है कि जेटीई और हुवेई के बीच गलाकाट प्रतियोगिता के कारण ही हुवेई ने बीएसएनएल के नेटवर्क को हैक किया, पर दोनों कंपनियों के इतिहास को देखें तो बड़ी दुर्दांत रही है। ये जहां भी गई हैं उस देश की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया है। अमरीका और यूरोप दोनों

परेशान रहे हैं। इन दोनों पर यह आरोप है कि चीन की सरकार के लिए, जासूसी करती हैं।

अपनी संपत्ति और पहुंच के बल पर ये दोनों कंपनियां किसी भी देश में पैर जमा ले रही हैं और फिर मनमाने तरीके से व्यवसाय कर रही है। दूरसंचार उपकरण के व्यवसाय में हुवेई दुनिया की दूसरी सबसे बड़ी कंपनी है तो जेटीई दुनिया की पांचवीं सबसे बड़ी कंपनी है। आकार और व्यापार में ये ये दोनों चीनी कंपनियां एरिक्शन अल्काटेल–लुसेंट और सीमेंस –नोकिया को कड़ी टक्कर दे रही हैं। भारत में भी इन दोनों चीनी कंपनियों ने दूरसंचार उपकरण व्यवसाय में अपनी जड़े जमा चुकी हैं।

इस चीनी कंपनी के कारनामों पर कड़ा कदम उठाने के बजाय दूरसंचार मत्री कपिल सिब्बल कहते हैं कि सभी बाहर की कंपनियों के बने उपकरणों की जांच कराने की व्यवस्था की जा रही है। राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए गंभीर खतरे पर बेहद सामान्य

प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए सिब्बल ने कहा कि बंगलोर स्थित इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस 60 करोड़ रुपये की लागत से एक प्रयोगशाला बनवाएंगे, जिसमें 50 करोड़ रुपये केंद्र सरकार देगी।

सिब्बल का कहना है कि चूंकि इस समय 70 से 80 फीसदी टेलीकॉम संयत्र आयातित हैं और इन्हें लगाने का काम निजी कंपनियां कर रही है, इसलिए सरकार ने सभी उपकरणों की जांच कराने का निर्णय लिया है। दूरसंचार मंत्रालय का काम काज संभाल रहे एक मंत्री का यह बयान कहीं से भी देश के हित से खिलवाड़ करने वाली कंपनियों के लिए कोई कड़ा संदेश नहीं देता, तब और जब हुवेई पर यह आरोप लगा है कि उसने संचार मंत्रालय की प्रमुख कपनी भारत संचार निगम लिमिटेड के नेटवर्क को हैक कर लिया। इससे अधिक जिम्मेदारी का बयान तो सिब्बल के कनिष्ठ मंत्री किली क्रुपरणी ने दिया। उन्होंने लोक सभा के पटल पर लिखित बयान जारी करते हुए संसद को आश्वस्त किया कि सरकार एक अंतरमंत्रिमंडलीय समिति का गठन कर चीनी कंपनी हुवेई द्वारा बीएसएनएल के नेटवर्क को हैक करने के मामले की जांच कर रही है। हालांकि उन्होंने भी जांच के दायरे के बारे में कोई विस्तृत जानकारी नहीं दी।

हुवेई और जेडटीई दोनों लगभग 1980 के दशक में अस्तित्व में आईं। दोनों कंपनियां चीन की माओवादी सरकार की देन है। जेटीई चीन की सरकारी कंपनी है, जबकि हुवेई निजी क्षेत्र की कंपनी है, जिसका गठन चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के एक इंजीनियर इगान ने किया। दो दशक में ही इन दोनों चीनी कंपनियो ंने पूरे विश्व में अपना दबदबा कायम कर दिया। नाम के साथ बदनामी भी इनकी खूब हुई। टेक्नोलॉजी और डिजायन चुराने के ढ़ेरो आरोप इन पर आज भी चस्पा हैं।

वर्ष 2003 में दुनिया की मशहूर कंपनी सिस्को ने हुवेई पर अपने उपकरणों के डिजायन चोरी करने का मुकदमा दायर किया। दक्षिण अमरीका में हुवेई पर अनैतिक तरीके से व्यापार करने का मामला चला। जिसमें घूस देने का भी मामला शामिल है। जेटीई पर भी आरोप है कि संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रतिबंध लगाए जाने के बावजूद इस कंपनी ने ईरान को विशेष प्रकार के कंप्यूटर उपकरण बेचे। अमरीका और यूरोप दोनों का यह मानना है कि हुवेई और जेटीई का चीनी सरकार से गहरा नाता है। दोनों महाद्वीपों में इन कंपनियों को लेकर ढ़ेर सारी आशंकाएं हैं। इन पर अंकुश रखने के लिए तरह तरह के उपाय किए जा रहे हैं। यूरोपियन यूनियन जेटीई द्वारा सस्ता कंप्यूटर डंप करने से रोकने लिए भारी शुल्क का प्रावधान करने जा रहा है तो अमरीका इन दोनों कंपनियों की संदेहास्पद भूमिका की जांच करा रहा हैं।

अमरीकी सांसद माइक रोजर्स ने एक मीडिया इस्टरव्यू में स्पष्ट कहा कि जो अमरीकी कंपनियां चीनी कंपनी हुवेई के साथ काम कर रही हैं, वे सभी राष्ट्रीय सुरक्षा और को लेकर चिंतित हैं। वे कोई और साझीदार ढूंढ रही हैं। कुछ समय पहले खुद जेटीई ने ही यह दावा किया था कि उसने स्मार्ट फोन के लिए हार्डवायर्ड इजाद किया है, जिससे हैंडसेट के बारे में पूरी जानकारी और कंट्रोल हासिल किया जा सकता है। अपनी स्वीकारोक्ति की गंभीरता को देखते हुए इस कंपनी ने खुद ही मान लिया के लिए यह सुरक्षा के लिए खतरा है।

हुवेई और जेटीई दोनों लगभग 1980 के दशक में अस्तित्व में आईं। दोनों कंपनियां चीन की माओवादी सरकार की देन है। जेटीई चीन की सरकारी कंपनी है, जबकि हुवेई निजी क्षेत्र की कंपनी है, जिसका गठन चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी के एक इंजीनियर इगान ने किया। दो दशक में ही इन दोनों चीनी कंपनियो ंने पूरे विश्व में अपना दबदबा कायम कर दिया। नाम के साथ बदनामी भी इनकी खूब हुई। टेक्नोलॉजी और डिजायन चुराने के ढ़ेरो आरोप इन पर आज भी चस्पा हैं।

अमरीका यह मानता हैं कि हुवेई और जेटीई चीन सरकार के लिए जासूसी करती हैं। विदेशी तकनीक के जानकार अमरीकी के पूर्व अधिकारी जिम लेकिस का कहना है कि चीन की सरकार ही इन्हें निर्देश देती है कि इन्हें कब क्या करना है और ये वहीं करती हैं। चीन की इन दोनों कंपनियों से अमरीका पूरी तरह सजग हैं, इसलिए इनका किसी बड़ी अमरीकी कंपनी से व्यावसायिक संबंध कम है। जिन अमरीकी कपनियों से हुवेई ने कोई साझीदारी की भी है तो वहां अक्सर अमरीकी अधिकारियों द्वारा जांच कराई जाती है। पर इतनी सारी जानकारी सार्वजनिक होने के बावजूद भारत सरकार चीन की इन दोनों कंपनियों को लगातार यहां काम करने दे रही है। दूरसंचार क्षेत्र के महत्वपूर्ण ठेके ये दोनों कंपनियां हासिल करने में सफल रही है। ❑

भारत-जापान : दोस्ती की ताकत

सच्चाई यह है कि चीन के आर्थिक उत्कर्ष में विदेशी विकास सहायता के रूप में सहयोग प्रदान करने से लेकर एक सैन्य शक्ति के तौर पर चीन के उभार को संतुलन प्रदान करने तक में जापान का बड़ा हाथ है। एक दशक पहले जापान का ओडीए प्राप्त करने में भारत ने चीन को पीछे छोड़ दिया था। ओडीए के तहत ऋण, आर्थिक और तकनीकी सहायता आते हैं। ओडीए के माध्यम से भारत के खस्ताहाल इन्फ्रास्ट्रक्चर के साथ–साथ अन्य कार्यक्रमों में जापान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एक ऐसे समय जब चीन में बढ़ती श्रम लागत और राजनीतिक दबंगई के कारण विदेशी निवेशक उससे मुंह मोड़ने लगे हैं, अपने विशाल घरेलू मार्केट और सस्ती श्रमशक्ति के बल पर भारत जापान का पसंदीदा निवेश साझीदार बनने का इच्छुक है।

■ ब्रह्म चेलानी

एशिया के भविष्य की धुरी भारत, चीन, जापान का त्रिकोण है। आज से पहले यह त्रिकोण कभी इतना मजबूत नहीं रहा। आने वाले वर्षों में एशिया की भू–राजनीति जापान और भारत के प्रगाढ़ संबंधों से काफी हद तक प्रभावित होगी। भारत–जापान के मजबूत होते संबंध चीन की बढ़ती दबंगई पर अंकुश लगा सकते हैं। पिछले माह जापान के सम्राट अकिहीतो अपनी पत्नी मिशिको के साथ भारत के दौरे पर आए थे। अब गणतंत्र दिवस परेड के अवसर पर मुख्य अतिथि के तौर पर जापान के प्रधानमंत्री शिंजो एबी रहे हैं। इनसे एशिया की दूसरी और तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं के बीच तेजी से विकसित होती साझेदारी का महत्व रेखांकित होता है। दोनों देश रक्षा सहयोग पर खास जोर दे रहे हैं। जापानी रक्षामंत्री के हालिया दौरे पर इस संबंध में सहमति बनी थी। एशिया का शक्ति संतुलन पूर्व–एशिया और हिंद महासागर में घटने वाली घटनाओं से निर्धारित होगा। इन दोनों क्षेत्रों के सूत्र के तौर पर भारत–जापान के बीच उभरती साझेदारी का एशिया के नए स्वरूप निर्धारण में वही महत्व है जो चीन के उभार या फिर अमेरिका की नई एशियाई धुरी नीति का है।

जापान और भारत एशिया महाद्वीप के दो विपरीत ध्रुवों पर स्थित हैं। इन दोनों को एशिया के शक्ति संतुलन और प्रशांत–हिंद महासागर में महत्वपूर्ण समुद्री मार्गों की सुरक्षा करने में अहम भूमिका निभानी है। इस क्षेत्र का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है, क्योंकि यह वैश्विक

व्यापार और ऊर्जा आपूर्ति का महत्वपूर्ण समुद्री मार्ग है। जापान के प्रथम दंपती का दिसंबर का भारत दौरा भारत–जापान संबंधों में मील का पत्थर है। विश्व के सबसे पुराने जापानी राजवंश के 2600 साल के इतिहास में अब तक किसी भी सम्राट ने भारत का दौरा नहीं किया था, यद्यपि जापान में भारत को तेंजीकू यानी बौद्ध धर्म के दिव्य राष्ट्र के रूप में सम्मान दिया जाता है।

नई दिल्ली ने एक दशक पहले जापान के शाही दंपति को न्यौता दिया था। भारत के प्रशंसक जापान के प्रधानमंत्री एबी ने इस दौरे के प्रति उत्सुकता दिखाई। इससे नई दिल्ली और जापान की सरकारों के बीच करीबी संबंधों की वचनबद्धता का संकेत मिलता है। भारत के गणतंत्र दिवस समारोह में एबी के मुख्य अतिथि के रूप में शामिल होने से एशिया के दो प्रमुख लोकतंत्रों को जोड़ने वाली स्वतंत्रता और संपन्नता की नीति को नया सामरिक अर्थ मिलेगा।

सच्चाई यह है कि चीन के आर्थिक उत्कर्ष में विदेशी विकास सहायता के रूप में सहयोग प्रदान करने से लेकर एक सैन्य शक्ति के तौर पर चीन के उभार को संतुलन प्रदान करने तक में जापान का बड़ा हाथ है। एक दशक पहले जापान का ओडीए प्राप्त करने में भारत ने चीन को पीछे छोड़ दिया था। ओडीए के तहत ऋण, आर्थिक और तकनीकी सहायता आते हैं। ओडीए के माध्यम से भारत के खस्ताहाल इन्फ्रास्ट्रक्चर के साथ–साथ अन्य कार्यक्रमों में जापान महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एक ऐसे समय जब चीन में बढ़ती श्रम लागत और राजनीतिक दबंगई के कारण विदेशी निवेशक उससे मुंह मोड़ने लगे हैं, अपने विशाल घरेलू मार्केट और सस्ती श्रमशक्ति के बल पर भारत जापान का पसंदीदा निवेश साझीदार बनने का इच्छुक है।

वर्षों तक चीन पर ध्यान केंद्रित करने के पश्चात जापानी कंपनियां भी भारत में निवेश करने में रुचि दिखा दे रही हैं। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में बदलाव ने जापान को भारत का सबसे बड़ा प्रत्यक्ष विदेशी निवेशक बना दिया है। कमजोर होता येन भारत में जापान के पूंजी प्रवाह की प्रक्रिया तेज करेगा। इससे भारत को अपने विशाल चालू खाता घाटे को पाटने के में मदद मिलेगी। सामरिक सहयोग की नीति को भी कमतर नहीं आका जा सकता। एशिया के तीन बड़े देशों में चीन सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है। इसके बाद जापान और भारत का नंबर आता है। अगर भारत और जापान को एक साथ जोड़ दिया जाए तो यह संयुक्त अर्थव्यवस्था चीन से भी बड़ी हो जाती है। ऐसे में हैरत का विषय नहीं है कि भारत और जापान अपने संबंधों में सुधार के लिए तेजी से प्रयासरत हैं। वास्तव में दुनिया में सर्वाधिक स्थिर आर्थिक संबंध जैसे कि अटलांटिक देशों के बीच और जापान–अमेरिका के बीच भागीदारी की नींव सुरक्षा सहयोग पर आधारित हैं। गैर सामरिक रणनीति पर आधारित आर्थिक संबंध अपेक्षाकृत कम स्थिर रहे हैं।

आधुनिक इतिहास में एशिया के अन्य देशों की तुलना में जापान सबसे आगे रहा है। वर्ष 1868 से 1912 के बीच में जापान पहला आधुनिक एशियाई देश बना। विश्व शक्ति के तौर पर उभरने वाला जापान पहला एशियाई देश भी बना, जिसने मांचू के शासन वाले चीन और जार के नेतृत्व वाले रूस को अलग–अलग युद्धों में पराजित किया। द्वितीय विश्व युद्ध में मात खाने के बाद जापान तेजी से फिर खड़ा हुआ और एशिया की प्रथम वैश्विक आर्थिक शक्ति बना। वैश्विक आपूर्ति के मामले में भी जापान की गणना विश्व के सर्वाधिक संपन्न देशों में की जाती है। आय की दृष्टि से यदि विभिन्न देशों के नागरिकों की तुलना की जाए तो एशियाई देशों में जापान में आय की असमानता सबसे कम है, जिसका गिनी गुणांक 0.25 है। जापान में प्रति व्यक्ति जीडीपी योगदान 37000 डॉलर है। प्रति व्यक्ति क्रय क्षमता के लिहाज से जापान के लोग चीन से चार गुना और भारत से दस गुना अधिक सक्षम हैं।

यह भी सच है कि आर्थिक स्थिरता के कारण जापान भू–राजनीतिक दृष्टि से पिछले दो दशक से पिछड़ गया, जबकि इस बीच चीन आश्चर्यजनक रूप से तरक्की करने में सफल रहा है। मीडिया ने जापान में वृद्धों की बढ़ती संख्या को नकारात्मक रूप में चित्रित किया, जबकि वास्तविकता यही है कि इस शताब्दी में वास्तविक प्रति व्यक्ति आय में बढ़ोतरी की दृष्टि से जापान अमेरिका और ब्रिटेन से भी आगे रहा है। अन्य महत्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं की तुलना में जापान में बेरोजगारी की दर लंबे समय से सर्वाधिक कम है। विश्व के किसी भी अन्य बड़े देश की तुलना में जापान के लोगों की जीवन प्रत्याशा सबसे अधिक है।

सच्चाई यही है कि एशिया के विविध घटनाक्रमों में जापान के राजनीतिक पुनरुत्थान पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। जापान के राजनीतिक उभार को लेकर बहुत आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यदि भारत के खराब अतीत के इतिहास को देखा जाए तो 1947 तक करीब आठ शताब्दियों तक विदेशी आक्रांताओं के अधीन रहा है। दूसरी ओर जापान युद्ध की परंपरा में ऐतिहासिक रूप से भारी रहा है। यह केवल द्वितीय विश्व युद्ध में पराजित हुआ। अब फिर से जापान का गौरवभाव अधिक मुखर हो रहा है। जापान की राष्ट्रवादी सोच और बढ़ते प्रभाव के चलते एशिया में शक्ति संतुलन का मुद्दा अहम हो गया है।

भारत–जापान के बीच सहभागिता बढ़ने का सकारात्मक असर होगा और एशिया का शक्ति संतुलन बदलेगा। जापान से मिलने वाली मदद आर्थिक और सामरिक हितों की दृष्टि से भारत के लिए काफी महत्वपूर्ण है। यह ओबामा प्रशासन द्वारा भारत के प्रति अपनाए जा रहे लेन–देन की दृष्टि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। वर्तमान में जापान भारत के साथ पहले से कहीं अधिक मजबूत और सतत सहभागिता का पक्षधर है। ❑

क्यों है निराश आज किसान

ग्रामीण क्षेत्रों में धन का प्रवाह जिस तेजी से बढ़ा है, उस तेजी से बैंक ग्रामीणों तक नहीं पहुंच पाए हैं। ग्रामीण क्षेत्र के सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंकों को ग्रामीण जरूरतों के मुताबिक नई प्राथमिकताएं निर्धारित करनी होंगी। हमें स्वीकार करना ही होगा कि गांवों में अच्छी बैंकिंग सेवा से ग्रामीण अर्थव्यवस्था खुशहाल बनायी जा सकती है। हम आशा करें कि मई 2014 के लोकसभा चुनावों के बाद बनने वाली नई सरकार द्वारा किसानों के समक्ष लगातार उठ रहे चिंताजनक सवालों तथा कृषि क्षेत्र में लगातार बढ़ रही निराशाओं की सच्चाई को समझा जाएगा और इनके निराकरण के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता से रणनीतिक प्रयास किए जाएंगे।

■ **जयंतीलाल भंडारी**

देश में किसानों के जीवन और कृषि की दयनीय दशा का परिदृश्य चिंताजनक और चुनौतीपूर्ण है। विभिन्न वर्गों की तुलना में वास्तविक कृषि सब्सिडी का बहुत कम होना किसानों की दुर्दशा का सबसे प्रमुख कारण है। जनवरी 2014 में पेट्रोलियम मंत्रालय के पेट्रोलियम प्लानिंग एंड एनालिसिस सेल द्वारा प्रस्तुत अध्ययन के मुताबिक देश में डीजल की 70 फीसद खपत परिवहन में होती है। इसका लाभ किसानों की तुलना में कॉरपोरेट क्षेत्र को बहुत अधिक मिलता है। डीजल पर दी जा रही कुल सब्सिडी 92,061 करोड़ रपए है। इसमें भारी कमर्शियल वाहनों के लिए 26,000 करोड़, प्राइवेट कारों एवं यूटिलिटी व्हिकल्स के लिए 12,100 करोड़ तथा कमर्शियल कारों के लिए 8,200 करोड़ रपए दिए जा रहे हैं। 15,000 करोड़ की सब्सिडी अन्य क्षेत्रों को जाती है, जिनमें जनरेटर भी शामिल हैं।

यद्यपि डीजल सब्सिडी कृषि क्षेत्र के नाम पर जरूरी बतायी जाती है परंतु ज्यादातर मामलों में सरकार सब्सिडी को किसानों तक पहुंचाने में पीछे रह जाती है। संसद स्थाई समिति का यह निष्कर्ष भी चिंताजनक है कि देश के 90 प्रतिशत किसानों को कृषि सब्सिडी का लाभ नहीं पहुंचता है। समिति कहती है कि किसानों के हित में सब्सिडी को तर्कसंगत बनाया जाना जरूरी है। इतना ही नहीं, जनवरी 2014 में संसद की लोक लेखा समिति (पीएसी) ने यूपीए सरकार की महत्वाकांक्षी कृषि ऋण माफी और ऋण राहत योजना में कई खामियां उजागर की हैं और कहा है कि दिशा–निर्देशों का उल्लंघन और खराब निगरानी जैसी तमाम वजहों से यह योजना अपना लक्ष्य नहीं पा सकी है।

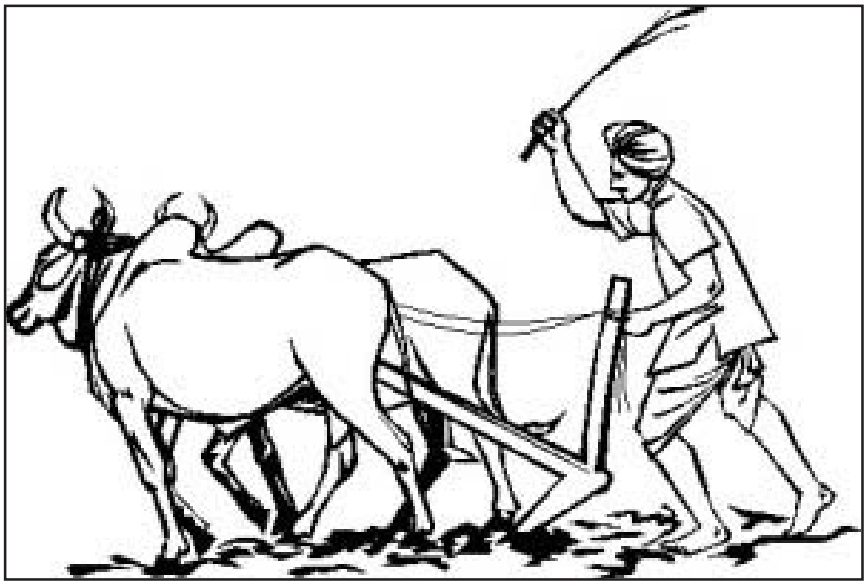

पीएसी ने अपनी ड्राफ्ट रिपोर्ट में कहा है कि इसको लागू करने के लिए जिम्मेदार वित्तीय सेवा विभाग (वित्त मंत्रालय), नोडल एजेंसियों व कार्यान्वयन संस्थानों ने खुले तौर पर वित्तीय और प्रशासनिक अनुशासनहीनता का प्रदर्शन किया है। मार्च 2010 के प्रारंभिक आंकड़ों के मुताबिक इस के तहत सरकार पर 65,318 करोड़ रुपये का बोझ पड़ा और 3.69 करोड़ किसानों को लाभ मिला। लेकिन विस्तृत जांच के बाद लाभार्थियों के स्तर पर तमाम त्रुटियों का पता चला। दिशा–निर्देशों का उल्लंघन करते हुए माइक्रो फाइनेंस इंस्टीट्यूशंस का भी लोन माफ किया गया, रिकार्ड के साथ छेड़छाड़ की गई, वास्तव में हकदार बहुत से किसानों को लाभ नहीं मिला और योजना की निगरानी ठीक से नहीं की गई।

कर्ज माफी योजना के बारे में चिंता जताते हुए नियंत्रक व महालेखा परीक्षक ने भी कहा है कि कई ऐसे मामले देखे गए हैं, जिनमें अयोग्य किसानों का कर्ज माफ हुआ जबकि वास्तविक हकदार वंचित रह गए। ऐसे में विचारणीय है कि आज भी जब देश की 60 प्रतिशत आबादी रोजगार

के लिए खेती–किसानी से जुड़ी हुई है, तब कृषि क्षेत्र का सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में जो योगदान आजादी के बाद 50 फीसद था, वह घटते हुए 13 प्रतिशत क्यों हो गया है?

1980 के दशक में चरम पर रही हरित क्रांति बाद के वर्षों में असफल क्यों हो गई और विभिन्न कृषि जिंसों के उत्पादन में महत्वपूर्ण इजाफा होने के बावजूद उनकी कीमत में अत्यधिक बढ़ोतरी क्यों हुई? ऐसा क्यों हुआ कि 1990 के बाद पिछले दो दशकों में कृषि क्षेत्र में होने वाला निवेश देश के सकल घरेलू उत्पाद का महज 2.7 फीसद रहा जबकि गैर कृषि क्षेत्रों में इसकी दर 36.6 फीसद रही।

ऐसा क्यों हुआ कि कृषि क्षेत्र में होने वाले सरकारी निवेश का लगभग 80 फीसद हिस्सा बड़ी और मझली सिंचाई परियोजनाओं में चले जाने के बाद भी ये परियोजनाएं क्षमता से कम इस्तेमाल की गईं और गैर किफायती इस्तेमाल के कारण उनसे अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाए। ऐसा कैसे हुआ कि कृषि और उससे जुड़े अन्य क्षेत्रों में सालाना विकास दर जो आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान 4.8 फीसद थी, 9वीं, 10वीं,11वीं पंचवर्षीय योजना के दौरान असतन 2.5 फीसद रह गई।

स्थिति यह है कि हमारा किसान अपनी सम्पूर्ण पूंजी और श्रम का निवेश कर खेतों को लहलहा तो देता है पर जब उसे अपने कृषि उत्पादों की उचित कीमत नहीं मिलती है तो वह निराश हो जाता है। राष्ट्रीय न्यादर्श सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसअ) का कहना है कि 40 प्रतिशत किसान खेती को बेहद जोखिमभरा और दुखदायी पेशा मानते हुए इसे छोड़ना चाहते हैं। सही कीमत न मिलने पर किसान की रुचि कृषि कार्य में कैसे बढ़ेगी? किसान कृषि की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए उधार लेकर पूंजी कब तक और क्यों लगाता रहेगा? जब कृषि उत्पादों से किसान उपयुक्त कीमत नहीं पाएगा, तो उसके पास खुशहाली कैसे आएगी?

हमें किसानों के हित में ऐसे निर्णय लेने होंगे ताकि उन्हें वास्तविक फायदा मिले। **अब देश में कृषि बाजारों का आधुनिकीकरण किए जाने और उनको बहुवांछित बुनियादी ढांचा मुहैया कराए जाने की भी आवश्यकता है। स्थानीय बाजारों को राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय बाजारों से जोड़ा जाना चाहिए ताकि किसानों को उनकी फसल का उपयुक्त मूल्य मिल सके। जैव प्रद्यौगिकी क्षेत्र को भी चावल, गेहूं, दलहन, तिलहन की उत्पादकता बढ़ाने के लिए प्रभावशाली तरीकों की डगर पर आगे बढ़ना होगा। कृषि को मानव और पर्यावरण आदि की ओर से मिल रही चुनतियों से बचाने के लिए विपणन तथा अन्य सुधारों की ओर ध्यान देना होगा।**

ग्रामीण रोजगार बढ़ाने के लिए देश में मनरेगा को कारगर बनाना होगा। भविष्य में मनरेगा को और प्रभावी और परिणाम मूलक बनाने के लिए जरूरी होगा कि जवाबदेही के साथ ग्राम पंचायतों को उनकी जरूरत के अनुसार कार्य चुनने और मनरेगा के मजदूरों को भागीदार बनाने के लिए ज्यादा अधिकार दिए जाएं। निसंदेह मनरेगा में कृषि उत्पादन बढ़ाने की जबरदस्त क्षमता है जिसका पूरा दोहन नहीं हुआ है। इस योजना से न केवल गांवों में सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन हो सकता है, बल्कि लघु व छोटे किसानों को सिंचाई सुविधा मुहैया कराने, भूमि विकास और कृषि को बढ़ावा देने की भी बहुत संभावना है।

कृषि में आधुनिक प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल के साथ इस योजना को जोड़कर किसानों की उपज कई गुना बढ़ायी जा सकती है। अब किसानों को साहूकारों के चंगुल से बचाने के लिए बैंकों का सहारा जरूरी है। भारतीय रिजर्व बैंक ने अपनी नवीनतम रिपोर्ट में बताया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद को–आपरेटिव बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों द्वारा कृषि सेक्टर को दिए जाने वाले कर्ज में लगातार गिरावट आ रही है।

आरबीआई ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि ग्रामीण इलाके में पांच में से दो परिवार यानी 40 फीसद ग्रामीण अनौपचारिक स्रोतों यानी साहूकारों से कर्ज ले रहे हैं। कहा गया है कि सरकारी एजेंसियों की ग्रामीण क्षेत्रों में कुल वितरित होने वाले कर्ज में हिस्सेदारी 50 फीसद से कम पर पहुंच गई है। दरअसल गांवों के लिए सरकार द्वारा बढ़ते बजट आवंटन के कारण ग्रामीण बाजार की चमक बढ़ती जा रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में धन का प्रवाह जिस तेजी से बढ़ा है, उस तेजी से बैंक ग्रामीणों तक नहीं पहुंच पाए हैं। ग्रामीण क्षेत्र के सभी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों तथा सहकारी बैंकों को ग्रामीण जरूरतों के मुताबिक नई प्राथमिकताएं निर्धारित करनी होंगी। हमें स्वीकार करना ही होगा कि गांवों में अच्छी बैंकिंग सेवा से ग्रामीण अर्थव्यवस्था खुशहाल बनायी जा सकती है।

हम आशा करें कि मई 2014 के लोकसभा चुनावों के बाद बनने वाली नई सरकार द्वारा किसानों के समक्ष लगातार उठ रहे चिंताजनक सवालों तथा कृषि क्षेत्र में लगातार बढ़ रही निराशाओं की सच्चाई को समझा जाएगा और इनके निराकरण के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता से रणनीतिक प्रयास किए जाएंगे। ❑

नीति नियंताओं की नाकामी

कृषि को घाटे का सौदा बनाकर हम बेरोजगारी और असंतोष को बढ़ाने का काम ही कर रहे हैं। योजना आयोग के एक अन्य अध्ययन पर गौर करें। इसका निष्कर्ष है कि जब 2005–09 के बीच देश की जीडीपी 8–9 प्रतिशत के बीच मंडरा रही थी तब 1.40 करोड़ किसानों को कृषि छोड़नी पड़ी। आम तौर पर यही माना जाता है कि इन किसानों को विनिर्माण क्षेत्र में काम मिल गया होगा, किंतु हैरानी की बात है कि इस बीच विनिर्माण क्षेत्र में भी नकारात्मक विकास देखने को मिला और करीब 57 लाख लोगों को बेरोजगार होना पड़ा।

■ **देविन्दर शर्मा**

एक ऐसे समय जब राजनीतिक परिदृश्य में परिवर्तन का बोलबाला है, जब शहर बदल रहे हैं, गांव वैसे नहीं रह गए हैं जैसे हुआ करते थे, जब कुछ पढ़े लिखे लोगों की आमदनी बढ़ रही है और जब पिरामिड का तल यानि गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों को मुफ्त उपहार दिए जा रहे हैं तब भारतीय समाज का एकमात्र अंग ऐसा नजर आता है जो बदलाव की इस बयार से बिल्कुल अछूता है। यह है 60 करोड़ की आबादी वाला किसान समुदाय।

पिछले 17 सालों में करीब तीन लाख किसान खुदकुशी कर चुके हैं और 65 प्रतिशत से अधिक किसान कर्ज के बोझ में दबे हैं, कृषि एक ऐसा स्थल है जहां देश की सबसे अधिक आबादी सबसे कम आमदनी के साथ रहती है। देश की जी. डी.पी. में कृषि का योगदान बराबर गिरता जा रहा है। फिलहाल यह आंकड़ा 13 प्रतिशत पर पहुंच गया है। इसका साफ मतलब है कि किसान अस्तित्व के संकट से जूझ रहे हैं। कृषि घाटे का सौदा होती जा रही है, इसलिए 60 फीसद से अधिक किसान दो जून की रोटी के लिए मनरेगा पर निर्भर हैं।

दूसरे शब्दों में जो लोग देश के लिए खाद्यान्न पैदा करते है वे खुद भूखे पेट सोने को मजबूर हैं। कृषि की बदहाली का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 2007 से 2012 के बीच करीब 3.2 करोड़ किसानों ने खेती से तौबा कर ली है और पेट भरने के लिए शहरों का रुख कर चुके हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार हर रोज 2,500 किसान खेती को

तिलांजलि दे रहे हैं। कुछ अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि हर दिन करीब पचास हजार लोग गांवों से शहरों की ओर कूच कर जाते हैं। इनमें मुख्य तौर पर किसान ही शामिल हैं।

एन.एस.एस.ओ. के अनुसार यदि विकल्प मिले तो 42 प्रतिशत किसान खेती–बाड़ी को हमेशा के लिए छोड़ देना चाहते हैं। जो लोग कृषि छोड़ रहे हैं, अपना घर–बार छोड़ रहे हैं और बेहतर जीवन के लिए शहर जा रहे हैं वहां वे भवन निर्माण उद्योग में मजदूरी करने या फिर रिक्शा खींचने को मजबूर होते हैं। अर्थशास्त्री और नीति निर्माता इसे आर्थिक विकास का प्रतीक बताते हैं। भारतीय रिजर्व बैंक के प्रमुख रघुराम राजन के शब्दों में लोगों को कृषि से बाहर निकालना ही असल विकास है। किसानों को खेती से बेदखल करके उन्हें भूमिहीन श्रमिक बना देना ही नया आर्थिक मंत्र है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह कहते हैं कि 70 प्रतिशत किसानों की आवश्यकता ही नहीं है और उन्हें खेती को त्याग देना चाहिए।

विश्व बैंक चाहता है कि 2015 तक

भारत के 40 करोड़ लोग खेती को छोड़कर शहरों में बस जाएं। इतनी बड़ी आबादी के गांवों से शहरों में स्थानांतरण का तर्क मेरी समझ में कभी नहीं आया। ये लोग गांवों में किसी तरह अपना पेट भर रहे हैं। उनके पास रोजगार की कमी हो सकती है किंतु भवन निर्माण में सस्ते श्रम के लालच में उन्हें शहरों में भेज देना तो कृषि संकट का कोई हल नहीं है। कृषि क्षेत्र भारत में सबसे बड़ा नियोक्ता है।

कृषि को घाटे का सौदा बनाकर हम बेरोजगारी और असंतोष को बढ़ाने का काम ही कर रहे हैं। योजना आयोग के एक अन्य अध्ययन पर गौर करें। इसका निष्कर्ष है कि जब 2005–09 के बीच देश की जीडीपी 8–9 प्रतिशत के बीच मंडरा रही थी तब 1.40 करोड़ किसानों को कृषि छोड़नी पड़ी। आम तौर पर यही माना जाता है कि इन किसानों को विनिर्माण क्षेत्र में काम मिल गया होगा, किंतु हैरानी की बात है कि इस बीच विनिर्माण क्षेत्र में भी नकारात्मक विकास देखने को मिला और करीब 57 लाख लोगों को बेरोजगार होना पड़ा। ये करोड़ों बेरोजगार कहां गए? इस प्रकार के हताशाजनक परिदृश्य में लोगों को कृषि से बेदखल होने को मजबूर करना आर्थिक और राजनीतिक किसी भी रूप से समझदारी भरा कदम नहीं है।

आज गरीब किसानों पर दोहरी मार है। वे अपने खेत–खलिहान को बेचकर शहरों का रुख करने को मजबूर होते हैं, किंतु जब आर्थिक वृद्धि धीमी पड़ जाती है तो उन्हें दिहाड़ी मजदूर तक का काम मिलना मुश्किल हो जाता है। मजबूरी में उन्हें वापस गांव लौटना पड़ता है और जमीन के अभाव में या तो मनरेगा के सहारे किसी तरह अपना पेट भरते हैं या फिर खेतों में मजदूरी करते हैं। क्रिसिल के एक अध्ययन के अनुसार 2012 और 2014 में 1.5 करोड़ किसानों के गांवों में वापस लौटने का अनुमान है, क्योंकि उन्हें शहरों में कोई काम नहीं मिला है। गांवों से बड़ी संख्या में शहरों की ओर पलायन भारत की आर्थिक नीतियों की उपज है। यह बेहद चिंता का विषय है कि दिग्गज अर्थशास्त्रियों को इतने भारी जनसांख्यिकीय स्थानांतरण के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दुष्परिणामों का जरा भी अनुमान नहीं है।

आज गरीब किसानों पर दोहरी मार है। वे अपने खेत–खलिहान को बेचकर शहरों का रुख करने को मजबूर होते हैं, किंतु जब आर्थिक वृद्धि धीमी पड़ जाती है तो उन्हें दिहाड़ी मजदूर तक का काम मिलना मुश्किल हो जाता है। मजबूरी में उन्हें वापस गांव लौटना पड़ता है और जमीन के अभाव में या तो मनरेगा के सहारे किसी तरह अपना पेट भरते हैं या फिर खेतों में मजदूरी करते हैं।

अनुमान के मुताबिक 2030 तक करीब 50 प्रतिशत आबादी शहरों में रह रही होगी। इससे निश्चित तौर पर सरकार पर शहरों में रोजगार के अधिक अवसर सृजित करने का दबाव बढ़ेगा। दुर्भाग्य से यह संभव नहीं है, क्योंकि आर्थिक वृद्धि का ढांचा बेरोजगारों की वृद्धि पर आधारित है। यदि कोई सार्थक परिवर्तन होना है तो यह कृषि के क्षेत्र में ही संभव है, किंतु अगर आप कृषि में ठेकेदारी प्रथा और कॉरपोरेट कृषि को बढ़ावा देने की सोच रहे हैं तो इससे कृषि संकट का समाधान निकलने वाला नहीं है। इसके लिए अलग नुस्खे की जरूरत है जिसका जिक्र आर्थिक किताबों में नहीं मिलता।

यह नुस्खा ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने और टिकाऊ कृषि को अपनाने में निहित है। महाराष्ट्र के हिबरे बाजार गांव ने यह साबित कर दिया है कि ऐसा करना संभव है। हिबरे बाजार एक सूखाग्रस्त, विपन्न गांव को अब 60 करोड़पतियों के गांव में बदल चुका है। यह सब प्राकृतिक संसाधनों पर समुदायों के नियंत्रण से संभव हुआ। यहां जोर दीर्घकाल में कृषि को टिकाऊ और लाभप्रद बनाने पर रहा। किसानों को सुनिश्चित मासिक आय उपलब्ध कराने से आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित होगी। जैसे ही कृषि लाभप्रद हो जाएगी, किसानों से दबाव हट जाएगा। यह तभी संभव है जब भारतीय रिजर्व बैंक ग्रामीण अर्थव्यवस्था के पुनर्निर्माणके लिए वृहत–आर्थिक नीतियां तैयार करे। दुर्भाग्य से यह आजकल अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक की नीतियों पर चल रहा है, जो गांवों से शहरों में आबादी के पलायन के पक्ष में हैं। अर्थव्यवस्था के उद्धार के लिए कृषि को इसका मूलाधार बनाना होगा। इसमें देश की दो–तिहाई आबादी को रोजगार देने, पर्यावरण संतुलन कायम रखने और राष्ट्र की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की सामर्थ्य है।

प्रसिद्ध कृषि वैज्ञानिक डॉ. एमएस स्वामीनाथन का कहना है कि भविष्य हथियार वाले देशों के बजाय उन देशों का उज्जवल है जिनके पास खाद्यान्न है। हमें कृषि को बर्बाद करके देश के भविष्य को अंधकारमय नहीं बनाना चाहिए। इसी बदलाव की भारत को जरूरत है। ❑

थाली से गायब होती दाल

हालात इतने खराब हैं कि पिछले 22–23 सालों से हम हर साल दालों का आयात तो कर रहे हैं, लेकिन दाल में आत्मनिर्भर बनने के लिए इसका उत्पादन और रकबा बढ़ाने की कोई ठोस योजना नहीं बन पा रही है। यहां यह जानना जरूरी है कि भारत दुनिया भर में दाल का सबसे बड़ा खपत कर्ता, पैदा करने वाला और आयात करने वाला देश है। दुनिया में दाल के कुल खेतों का 33 प्रतिशत हमारे यहां है जबकि खपत 22 फीसद है। इसके बावजूद अब वे दिन सपना हो गए हैं जब आम–आदमी को 'दाल–रोटी खाओ, प्रभु के गुण गाओ' कह कर कम में ही गुजारा करने की सीख दे दी जाती थी।

■ पंकज चतुर्वेदी

इन दिनों आम आदमी के भोजन से दाल गायब हो रही है। इसका कारण है, मांग की तुलना में कम उत्पादन। डॉलर के मुकाबले रुपए के कमजोर होने से घटता आयात और उसके आसमान छूते दाम। वह दिन अब हवा हो गए हैं जब आम मेहनतकश लोगों के लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत दालें हुआ करती थीं। देश की आबादी बढ़ी, लोगों की पौष्टिक आहार की मांग भी बढ़ी, लेकिन नहीं बढ़ा तो दाल बुवाई का रकबा। परिणाम सामने हैं– मांग की तुलना में दाल की आपूत्ति कम है और इसी कारण बाजार भाव मनमाने हो रहे हैं।

भारत में 20 मीट्रीक टन दाल की सालाना जरूरत है, जबकि देश में वर्ष 2012–13 में इसका उत्पादन हुआ महज 18.45 मीट्रिक टन। दाल की कमी होने के कारण ही इसके दाम बढ़ रहे हैं, परिणामस्वरूप आम आदमी प्रोटीन की जरूरतों की पूर्ति के लिए दीगर अनाजों पर निर्भर हो रहा है। इस तरह दूसरे अनाजों की भी कमी और दामों में बढ़ोतरी हो रही है।

हालात इतने खराब हैं कि पिछले 22–23 सालों से हम हर साल दालों का आयात तो कर रहे हैं, लेकिन दाल में आत्मनिर्भर बनने के लिए इसका उत्पादन और रकबा बढ़ाने की कोई ठोस योजना नहीं बन पा रही है। यहां यह जानना जरूरी है कि भारत दुनिया भर में दाल का सबसे बड़ा खपत कर्ता, पैदा करने वाला और आयात करने वाला देश है। दुनिया में दाल के कुल खेतों का 33 प्रतिशत हमारे यहां है जबकि खपत 22 फीसद है। इसके बावजूद अब वे दिन सपना हो गए हैं जब आम–आदमी को 'दाल–रोटी खाओ, प्रभु के गुण गाओ' कह कर कम में ही गुजारा करने की सीख दे दी जाती थी।

आज दाल अलबत्ता तो बाजार में मांग की तुलना में काफी कम उपलब्ध है, और जो उपलब्ध है, उसकी कीमत चुकाना गरीब और आम–आदमी के बूते से बाहर हो गया है। वर्ष 1965–66 में देश का दलहन उत्पादन 99.4 लाख टन था, जो 2006–07 तक आते–आते भी 145.2 लाख टन ही पहुंच पाया।

यह दुख की बात है कि भारत, जिसकी अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है, वहां दाल जैसी मूलभूत फसलों की कमी को पूरा करने के लिए कोई ठोस कृषि–नीति नहीं है। एक ही उपाय है कि कमी हो तो बाहर से आयात कर लो। यह तदर्थवाद देश की परिपक्व कृषि–नीति का परिचायक कतई नहीं माना जा सकता है।

नेशनल सैंपल सर्वे के एक सर्वेक्षण के मुताबिक आम भारतीयों के खाने में दाल की मात्रा में लगातार हो रही कमी का असर उनके स्वास्थ्य पर दिखने लगा है। इसके बावजूद दाल की कमी कोई राजनीतिक मुद्दा नहीं बन पा रहा है। शायद सभी सियासी पार्टियों की रुचि देश के स्वास्थ्य से कहीं अधिक दालें बाहर से मंगवाने में हैं। तभी तो इतने शोर–शराबे के बावजूद दाल के वायदा कारोबार पर रोक नहीं लगाई जा रही है।

वर्ष 2008–09 में मुल्क के 220.9 लाख हेक्टेयर खेतों में 145.7 लाख टन दाल ही पैदा हो सकी। सनद रहे कि इस अवधि में देश की जनसंख्या में कई–कई गुणा बढ़ोतरी दर्ज हुई है। जाहिर है, आबादी के साथ दाल की मांग भी बढ़ी। इसी अवधि के दौरान गेहूं की फसल 104 लाख टन से बढ़ कर 725 लाख टन तथा चावल की पैदावार 305.9 लाख टन से बढ़ कर 901.3 लाख टन हो गई।

हरित क्रांति के दौर में दालों की उत्पादकता दर, अन्य फसलों की तुलना में बेहद कम रही है। दलहन फसलों की बुवाई के रकबे में बढ़ोतरी न होना भी चिंता की बात है। वर्ष 1965–66 में देश के 227.2 लाख हेक्टेयर खेतों पर दाल बोई जाती थी जबकि सन 2005–06 तक आते–आते यह रकबा घट कर 223.1 लाख हेक्टेयर रह गया।

वर्ष 1985–86 में विश्व में दलहन के कुल उत्पादन में भारत का योगदान 26.01 प्रतिशत था, लेकिन 1986–87 में यह आंकड़ा 19.97 पर पहुंच गया। हालांकि वर्ष 2000 आते–आते इसमें कुछ बढ़ोतरी हुई और यह 22.64 फीसद हो गया लेकिन ये आंकड़े हकीकत में मांग से बहुत दूर रहे।

हम गत 25 वर्षों से लगातार म्यांमार, कनाडा, आस्ट्रेलिया और टर्की से दालें मंगवा रहे हैं। पिछले साल देश के बाजारों में दालों के रेट बहुत बढ़ गए थे। तब आम आदमी बहुत परेशानी में था और उसने अपने स्तर पर विरोध भी दर्ज कराया, लेकिन आलू–प्याज के लिए कोहराम मचाने वाले राजनीतिक दल इस मुद्दे पर चुप्पी साधे रहे थे। पिछले साल सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी एमएमटीसी ने नवम्बर तक 18,000 टन अरहर और मसूर की दाल आयात करने के लिए नियंत्रण टेंडर को मंजूरी दी थी। माल आया भी, उधर हमारे खेतों ने भी बेहतरीन फसल उगली। एक तरफ आयातित दाल बाजार में थी, सो किसानों को अपने उत्पादन का अपेक्षित रेट नहीं मिला। ऐसे में किसान के हाथ फिर निराशा लगी और अगली फसल में उसने एक बार फिर दालों से मुंह मोड़ लिया। दाल के उत्पादन को प्रोत्साहित करने के इरादे से केंद्र सरकार ने वर्ष 2004 में इंटीग्रेटेड स्कीम फार आईल सीड, पल्सेज, आईल पाम एंड मेज (आईएसओपीओएम) नामक योजना शुरू की थी। इसके तहत दाल बोने वाले किसानों को सब्सिडी के साथ–साथ कई सुविधाएं देने की बात कही गई थी। लेकिन वास्तव में यह योजना नारों से ऊपर नहीं आ पाई। इससे पहले चौथी पंचवर्षीय योजना में 'इंटेंसिव पल्सेस डिस्ट्रीक्ट प्रोग्राम' के माध्यम से दालों के उत्पादन को बढ़ावा देने का संकल्प लाल बस्तों से उबर नहीं पाया।

सन् 1991 में शुरू हुई राष्ट्रीय दलहन विकास परियोजना भी आधे–अधूरे मन से शुरू की गई योजना थी। उसके भी कोई परिणाम नहीं निकले। जहां सन 1950–51 में हमारे देश में दाल की खपत प्रति व्यक्ति प्रति दिन 61 ग्राम थी जो 2009–10 तक आते–आते 36 ग्राम से भी कम हो गई। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) की मानें तो हमारे देश में दलहनों के प्रामाणिक बीजों हर साल मांग 13 लाख कुंतल है, जबकि उपलब्धता महज 6.6 लाख कुंतल। यह तथ्य इस बात की बानगी है कि सरकार दाल की पैदावार बढ़ाने के लिए कितनी गंभीर है। यह दुख की बात है कि भारत, जिसकी अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है, वहां दाल जैसी मूलभूत फसलों की कमी को पूरा करने के लिए कोई ठोस कृषि–नीति नहीं है। एक ही उपाय है कि कमी हो तो बाहर से आयात कर लो। यह तदर्थवाद देश की परिपक्व कृषि–नीति का परिचायक कतई नहीं माना जा सकता है।

नेशनल सैंपल सर्वे के एक सर्वेक्षण के मुताबिक आम भारतीयों के खाने में दाल की मात्रा में लगातार हो रही कमी का असर उनके स्वास्थ्य पर दिखने लगा है। इसके बावजूद दाल की कमी कोई राजनीतिक मुद्दा नहीं बन पा रहा है। शायद सभी सियासी पार्टियों की रुचि देश के स्वास्थ्य से कहीं अधिक दालें बाहर से मंगवाने में हैं। तभी तो इतने शोर–शराबे के बावजूद दाल के वायदा कारोबार पर रोक नहीं लगाई जा रही है। इससे भले ही बाजार भाव बढ़े, सटौरियों को बगैर दाल के ही मुनाफा हो रहा है। ❑

नाकामियों को छिपाने की एक और कोशिश

रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार लेन–देन के लिए उपयोग हो रही मुद्रा में 500 और 1000 रुपये के नोट की हिस्सेदारी 2005 से पहले की तुलना में काफी तेजी से बढ़ी है। 2005 से पहले यह हिस्सेदारी जहां 54 प्रतिशत थी, वहीं मार्च, 2013 के अंत में बढ़कर 83 प्रतिशत हो गई है। सरकार यदि यह सोचती है कि कर चोरों ने नोटों के रूप में नकदी जमा कर रखी होगी तो यह गलत है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर 2005 में महंगाई दर 5.57 प्रतिशत थी, जो आज बढ़कर 11.8 प्रतिशत हो गई है। साफ है कि नकदी की क्रयशक्ति घटी है। ऐसे में नकदी के रूप में नोटों को कौन मूर्ख जमा रखेगा? दूसरा, यदि रीयल इस्टेट या सोने में कर चारों ने निवेश कर रखा हो तो सरकार इस तरह के काले धन का पता कैसे लगाएगी?

■ **बलवीर पुंज**

रिजर्व बैंक द्वारा 2005 से पहले के नोट बदलने के आदेश का निहितार्थ क्या है? क्या सरकार इसके माध्यम से देश में मौजूद काले धन का पता लगाना चाहती है? क्या सरकार के इस प्रयास से काले धन की देश में जमाखोरी और उसके बहिर्गमन पर रोक लग सकेगी? अर्थजगत का एक वर्ग मानता है कि इससे जहां नकली नोटों की पहचान कर उन्हें बाजार से हटाया जा सकेगा वहीं कालेधन का भी पर्दाफाश होगा। क्या यह संभव है?

वास्तव में इस कदम से काले धन को सामने लाना संभव नहीं है। 2004 और 2009 के लोकसभा चुनाव में विदेशों में जमा काले धन की वापसी का मुद्दा भारतीय जनता पार्टी के घोषणापत्र का महत्वपूर्ण अंग था। 2009 में कांग्रेस ने भी देश से वादा किया था कि वह देश से बाहर जमा काले धन को एक निश्चित अवधि में सामने लाएगी, किंतु आज तक सरकार ने इस दिशा में एक भी ठोस कदम नहीं उठाया।

सर्वोच्च न्यायालय की लगातार फटकार और जर्मन सरकार द्वारा विदेशों में काला धन जमा करने वाले कर चोरों व भ्रष्टाचारियों की सूची उपलब्ध कराने के बावजूद सरकार कर चोरों का नाम उजागर करने से परहेज कर रही है। जर्मन के वित्त मंत्रालय ने एलटीजी बैंक से जो सूची प्राप्त की है उसमें करीब 100 भारतीयों के भी नाम शामिल हैं। उन कर चोरों को सरकार संरक्षण क्यों प्रदान कर रही है? अमेरिका स्थित 'ग्लोबल फाइनेंसियल इंटेग्रिटी' के ताजा अनुमान के अनुसार भारत से प्रतिवर्ष 1,35,000 करोड़ रुपये स्विस बैंक आदि में जमा कराया जाता है। इस काले धन की वापसी से भारत की अर्थव्यवस्था का कायापलट हो सकता है। सितंबर, 2013 तक भारत पर 400 अरब डॉलर से अधिक का विदेशी कर्ज है। हम उससे छुटकारा पा सकते हैं। आधारभूत संरचनाओं के विकास के लिए हमें वित्तीय कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ेगा, किंतु आर्थिक बदहाली के बावजूद सरकार विदेशों में जमा काले धन को वापस लाने का सार्थक प्रयास करने की जगह अंधेरे में तीर चला कर बटेर मारने का प्रयास कर रही है।

अब जबकि 2014 के लोकसभा चुनाव सिर पर हैं, सरकार रिजर्व बैंक के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास कर रही है कि वह काले धन को लेकर गंभीर है। रिजर्व बैंक ने 2005 से पहले के नोटों को वापस लेने का निर्णय किया है। रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार लेन–देन के लिए उपयोग हो रही मुद्रा में 500 और 1000 रुपये के नोट की हिस्सेदारी 2005 से पहले की तुलना में काफी तेजी से बढ़ी है। 2005 से पहले यह हिस्सेदारी जहां 54

प्रतिशत थी, वहीं मार्च, 2013 के अंत में बढ़कर 83 प्रतिशत हो गई है। सरकार यदि यह सोचती है कि कर चोरों ने नोटों के रूप में नकदी जमा कर रखी होगी तो यह गलत है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर 2005 में महंगाई दर 5.57 प्रतिशत थी, जो आज बढ़कर 11.8 प्रतिशत हो गई है। साफ है कि नकदी की क्रयशक्ति घटी है। ऐसे में नकदी के रूप में नोटों को कौन मूर्ख जमा रखेगा? दूसरा, यदि रीयल इस्टेट या सोने में कर चारों ने निवेश कर रखा हो तो सरकार इस तरह के काले धन का पता कैसे लगाएगी?

वर्ष 2005 से पहले के नोटों को वापस लेने के पीछे एक और कारण बताया जा रहा है। सरकार इसके माध्यम से नकली नोटों के चलन और व्यवसाय आधारित मनी लांड्रिंग पर अंकुश लगाना चाहती है। अप्रैल से दिसंबर, 2013 के बीच 1000 करोड़ रुपये की मनी लांड्रिंग पकड़ में आई है। आयातक माल की कीमत, मात्रा और गुणवत्ता में फेरबदल कर वास्तविक लागत को कम कर दिखाते हैं और उन्हें बाजार दरों पर ऊंची कीमतों पर बेचते हैं। बेईमान उद्योगपतियों व आयात–निर्यात के धंधे में लगे व्यापारियों द्वारा की गई काली कमाई टैक्स हेवेन्स में जमा होती है। वस्तुतः ऐसे गोरखधंधे करने वाले आयात तो ऊंची कीमतों पर करते हैं, उसी हिसाब से भारत से भुगतान भी होता है, किंतु वास्तव में डील जिस कम कीमत पर होती है उसके अंतर की राशि विदेश में बैठा उसका संपर्क सूत्र वसूल कर लेता है। इसी तरह निर्यात कम कीमतों पर दिखाकर भारत में तो कर चोरी की ही जाती है, डील में तय वास्तविक कीमत का अंतर विदेशी सूत्रों से ही प्राप्त कर लिया जाता है। आयात–निर्यात शुल्क बचाने के लिए आयातकों–निर्यातकों द्वारा अपनाए जाने वाले भ्रष्ट तरीकों पर जब तक अंकुश नहीं लगाया जाता, रिजर्व बैंक के इस प्रयास से इस दिशा में ज्यादा हासिल होने वाला नहीं है।

जहां तक नकली नोटों का प्रश्न है, भारत में नकली नोट बांग्लादेश, नेपाल, थाईलैंड, मलेशिया, श्रीलंका और चीन के जरिये भेजे जा रहे हैं। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 2006 से 2013 के बीच 62 करोड़ रुपये के जाली नोट पकड़े गए, जबकि 2011–12 में 69 अरब 38 करोड़ रुपये के जाली नोट चलन में थे। सरकारी सूत्रों के अनुसार देश में कुल नकदी के लेन–देन में जाली नोटों की हिस्सेदारी 21 प्रतिशत है। इन नकली नोटों की छपाई पाकिस्तान के सरकारी छापेखाने में हो रही है। 2010 से 2011 तक 1700 से 1900 करोड़ रुपये मूल्य के नकली नोट छापे गए, जबकि 2012 से अब तक 3,500 से 4,000 करोड़ रुपये के नकली नोट छापे जाने की पुख्ता सुबूत भारतीय खुफिया एजेंसियों के पास हैं। सरकार इस दिशा में क्या कदम उठा रही है? सरकार का दावा है कि 2005 के बाद वाले नोटों में सुरक्षा फीचर अधिक हैं, इसलिए पुराने नोटों को बदल कर नकली नोटों पर अंकुश लगाया जा सकेगा।

भारत सरकार तकनीक बदल कर नोटों को और अधिक सुरक्षित करने का प्रयास कर सकती है, किंतु क्या पाकिस्तान उस तकनीक की नकल करने में पीछे रहेगा? पाकिस्तान नकली नोटों के जरिये भारतीय अर्थव्यवस्था को तबाह करना चाहता है। भारत को हजार टुकड़ों में बांटने के अपने एजेंडे में सक्रिय पाकिस्तान नकली नोटों के माध्यम से उन आतंकी संगठनों को भी वित्तीय सहायता उपलब्ध कराता है, जो भारत को अस्थिर और लहूलुहान करने में निरंतर सक्रिय हैं।

खुफिया सूत्रों के अनुसार अंडरवर्ल्ड माफिया दाऊद इब्राहीम नकली नोटों के कारोबार का मुख्य सूत्रधार है। लश्कर, अलबदर, हूजी, जैशे–मोहम्मद, इंडियन मुजाहिदीन आदि आतंकी संगठनों को जाली नोटों के जरिये वित्ता पोषित किया जा रहा है। लश्करे–तैयबा के गिरफ्तार आतंकी अब्दुल करीम टुंडा ने पूछताछ में दिल्ली पुलिस को बताया है कि नकली नोटों का सारा नेटवर्क पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई की निगरानी में चलता है। एक ओर सरकार आतंकवाद को लेकर ढुलमुल रवैया अख्तियार किए हुए है तो दूसरी ओर आतंकवाद के पोषक पाकिस्तान से मैत्री कायम करने को लालायित रहती है। इस मानसिकता के साथ सीमा पार से आने वाले जाली नोटों को कैसे रोका जा सकता है? केन्द्र सरकार के दस साल के कुशासन से बदहाल हुई अर्थव्यवस्था को सतही आर्थिक नीतियों से उबारा नहीं जा सकता। ❑

बेईमान उद्योगपतियों व आयात–निर्यात के धंधे में लगे व्यापारियों द्वारा की गई काली कमाई टैक्स हेवेन्स में जमा होती है। वस्तुतः ऐसे गोरखधंधे करने वाले आयात तो ऊंची कीमतों पर करते हैं, उसी हिसाब से भारत से भुगतान भी होता है, किंतु वास्तव में डील जिस कम कीमत पर होती है उसके अंतर की राशि विदेश में बैठा उसका संपर्क सूत्र वसूल कर लेता है। इसी तरह निर्यात कम कीमतों पर दिखाकर भारत में तो कर चोरी की ही जाती है, डील में तय वास्तविक कीमत का अंतर विदेशी सूत्रों से ही प्राप्त कर लिया जाता है।

2014 की चुनौती : गवर्नेन्स का ग्लोबलाइजेशन

पिछले दशक में सरकार ने लोन वेवर, मनरेगा तथा राइट टू फूड के माध्यम से ऐसे ही खर्चों को पोषित किया है। हाईवे और रिसर्च में निवेश में कटौती की गई है। इससे गरीब को राहत जरूर मिली है लेकिन ग्रोथ दबाव में आ गई है और जनता बेरोजगार है। लोगों को रोजगार देने के स्थान पर अनाज बांट कर उनका वोट खरीदना कुशासन ही है।

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

गणतंत्र दिवस पर राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने हमें ध्यान दिलाया था कि हमारी सरकारें जनता की अपेक्षा पर खरी नहीं उतर रही हैं फलस्वरूप देश में असंतोष व्याप्त है। यही कहानी आर्थिक क्षेत्र की है। पिछले पांच वर्षों में अर्थव्यवस्था में आ रही गिरावट के पीछे कुशासन ही दिखाई देता है। विकास दर लगातार गिर रही है, महंगाई बढ़ती जा रही है और रुपया टूट रहा है।

महंगाई बढ़ने का कारण है सरकार द्वारा अपने राजस्व का लीकेज किया जा रहा है। जैसे सरकार का राजस्व एक करोड़ रुपया हो उसमें 20 लाख रुपये का रिसाव करके अफसरों तथा नेताओं के द्वारा सोना खरीद लिया गया। अब सरकार के पास वेतन आदि देने के लिये रकम नहीं बची। इन खर्चों को पोषित करने के लिये सरकार ने बाजार से ऋण लिये। इस ऋण को लेना आसान बनाने के लिये रिजर्व बैंक ने नोट छापे जिससे मुद्रा बाजार में रकम की उपलब्धता बढ़ जाए और सरकार आसानी से ऋण ले सके। पहले ही एक करोड़ के नोट प्रचलन में थे। अब 20 लाख के नोट और चक्कर काटने लगे। फलस्वरूप आलू, सीमेंट, कपड़ा आदि सभी वस्तुओं के दाम बढ़ने लगे जैसे मण्डी में आलू की सप्लाई पूर्ववत् हो और खरीददार ज्यादा आ जाएं तो दाम बढ़ जाते हैं। नये छापे गये नोटों की भूमिका खरीददार जैसी होती है। इस प्रकार लीकेज के कारण नोट छापने पड़े और महंगाई बढ़ रही है।

ग्रोथ रेट के गिरने का कारण भी रिसाव है। ग्रोथ रेट बढ़ाने के लिये व्यक्ति को खपत कम और निवेश ज्यादा करना पड़ता है। जैसे दुकानदार 2000 कमाये और 1000 निवेश करे तो ग्रो करता है। इसके विपरीत यदि वह 2000 कमाये और ऋण लेकर 3000 खर्च करे तो वह फिसलने लगता है। पिछले दशक में सरकार ने लोन वेवर, मनरेगा तथा राइट टू फूड के माध्यम से ऐसे ही खर्चों को पोषित किया है। हाईवे और रिसर्च में निवेश में कटौती की गई है। इससे गरीब को राहत जरूर मिली है लेकिन ग्रोथ दबाव में आ गई है और जनता बेरोजगार है। लोगों को रोजगार देने के स्थान पर अनाज बांट कर उनका वोट खरीदना कुशासन ही है।

रुपये के टूटने का कारण भी कुशासन है। हमारे माल की उत्पादन लागत ज्यादा आती है। हमारे उद्यमियों को भारी मात्रा में घूस देनी पड़ती है अतः माल महंगा हो जाता है। वे माल का निर्यात नहीं कर पाते हैं जबकि दूसरे देशों में माल की लागत कम आती है और उनका माल सस्ता पड़ता है। निर्यात कम होने के कारण हमें डॉलर कम मात्रा में मिलते हैं। आयात ज्यादा होने के कारण डालर की डिमांड ज्यादा होती है। सप्लाई और डिमांड के असंतुलन के कारण डॉलर महंगा हो जाता है और तुलना में रुपया सस्ता हो जाता है। इस प्रकार हमारी सभी समस्याओं की जड़ में भ्रष्टाचार और कुशासन ही नजर आता है।

वास्तव में गवर्नेन्स का ग्लोबलाइजेशन हो चुका है। पूर्व में हम अपनी सरहद के अन्दर भ्रष्टाचार को पोषित कर सकते थे। भ्रष्टाचार के कारण भारत में मोबाइल फोन 5,000 रुपये में मिले जबकि दूसरे देशों में वह 4,000 रुपये में मिले तो व्यवस्था गड़बड़ाती नहीं थी चूंकि सस्ते मोबाइल के आयात पर प्रतिबन्ध था। अब वही भ्रष्टाचार समस्या बन गया है चूंकि दूसरे सुशासित देशों में बना सस्ता माल प्रवेश कर रहा है और हमारी अर्थव्यवस्था चौपट हो रही है।

ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में जो देश सुशासित होगा वही जीतेगा। अब हमारे पास अपनी शासन प्रणाली को ग्लोबल स्टैन्र्डड पर सुधारने के अलावा कोई चारा नहीं है। जैसे स्वीमिंग पूल में ढकेले जाने के बाद तैरने के अलावा कोई विकल्प नहीं रहता है उसी प्रकार ग्लोबलाइजेशन में ढकेले जाने के बाद अब

सुशासन के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा है।

इस परिप्रेक्ष में हाल के चुनावों में 'भाजपा एवं आप' की सफलता से आशा बंधती है। मोदी ने गुजरात में भ्रष्टाचार पर अप्रत्याशित नियंत्रण स्थापित किया है। 'आप' की सादगी से भी आशा बंधती है। अतः मैं 2014 के लिये आशान्वित हूं। इन दोनों में से एक की सरकार बनने से रिसाव कम होगा और अर्थव्यवस्था स्वयं चल निकलेगी।

वैश्विक परिस्थितियों का भी 2014 पर प्रभाव पड़ेगा। मुद्दा अमरीका की चाल का है। वर्ष 2008 के बाद अमरीका के केन्द्रीय बैंक ने निवेशकों से ऋण लेकर भारी भरकम स्टिमुलस पैकेज लागू किया है। हमारी तरह अमरीकी सरकार के खर्च ज्यादा और रेवेन्यू कम है। सरकार द्वारा ऋण लेकर काम चलाया जा रहा है। इस स्टिमुलस के आधार पर अमरीकी अर्थव्यवस्था में ग्रोथ दिख रही है जैसे बीमार को ग्लूकोज़ चढ़ाया जाये तो कुछ समय के लिये वह उठ खड़ा होता है। लेकिन ऋण लेने की एक सीमा है जैसे ग्लुकोज़ चढ़ाकर मरीज को ज्यादा दिन तक स्वस्थ नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार बढ़ते ऋण के दूरगामी दुष्प्रभाव को देखते हुये अमरीका के केन्द्रीय बैंक ने स्टिमुलस की मात्रा घटाने का निर्णय लिया है।

प्रश्न है कि स्टिमुलस की इस टेपरिंग को अमरीकी अर्थव्यवस्था झेल पायेगी या नहीं? तमाम विश्लेषकों का मत है कि वर्तमान ग्रोथ टिकाऊ होगी। अमरीकी ग्रोथ से हमारे माल की मांग बढ़ेगी और हमें इसका लाभ मिलेगा। हमारे निर्यात सुदृढ़ होंगे और हमारी अर्थव्यवस्था चल निकलेगी। यह बात सही है परन्तु टेपरिंग का हमारे पर दूसरा दुष्प्रभाव भी पड़ेगा। अमरीका में ब्याज दर बढ़ेगी और निवेशक भारत से पैसा निकालकर अमरीका में निवेश करना पसन्द करेंगे। इस प्रकार अमरीकी अर्थव्यवस्था में ग्रोथ का हम पर मिलाजुला असर पड़ेगा। हमारे निर्यात बढ़ेंगे जबकि विदेशी निवेश घटेगा। ऐसा ही मिलाजुला प्रभाव अमरीका के संकटग्रस्त होने का पड़ेगा। तब हमारे निर्यात दबाव में आयेंगे जबकि हमें विदेशी निवेश जादा मिलेगा जैसा कि 2009 के बाद होता आया है। अतः मेरे आकलन में स्टिमुलस की टेपरिंग हमारे लिये अप्रासंगिक है।

निष्कर्ष है कि 2014 की एक मात्र चुनौती सुशासन की है। गवर्नेंस को ग्लोबल स्टैन्र्डडस पर लाने के अतिरिक्त दूसरा विकल्प नहीं है। सुशासन स्थापित होगा तो हमारी अर्थव्यवस्था स्वतः चल निकलेगी। अन्यथा हम इसी तरह अपनी घरेलू नाकामयाबी को वैश्विक कारणों पर अनायास थोपते रहेंगे। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका साम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

महात्मा गांधी : एक विचार

गांधी जी ने कहा मेरे सपनों का स्वराज तो गरीबों का स्वराज होगा। हमारा स्वराज तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक वह गरीबों को समस्त सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता। गांधी जी एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक संस्था थे। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जिस पर उन्होंने अपने विचार प्रकट नहीं किए हों। गांधी जी को हम आज न केवल भुलाते जा रहे हैं अपितु उनके नाम पर अनैतिक काम भी कर रहे हैं। आज गांधीवाद के नहीं बल्कि गांधी जी के विचारों पर आचरण करने की आवश्यकता है। गांधी जी को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके विचारों को अपने जीवन में अपनाएं एवं दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करें।

■ **डॉ. विजय वशिष्ठ**

गांधी एक व्यक्ति नहीं विचार है। गांधी आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने वे अपने जीवन कान में थे। आज हम गांधी को तो भूल रहे हैं और गांधीवाद के अनुयायी कहलाते हैं। गांधी विचार से हम न केवल वर्तमान समस्याओं का समाधन कर सकते हैं बल्कि एक नई व्यवस्था की संरचना भी कर सकते है। गांधी को गए आज 66 वर्ष हो गए। हम न केवल उनको भुलाते जा रहे हैं बल्कि उनके नाम की दुहाई देकर गलत काम भी करते जा रहे हैं। आज उनको सच्ची श्रद्धांजलि देने के लिए यह आवश्यक है कि उनके विचारों को पुनरु स्मरण कर उनको जीवन में अपनाने का संकल्प लें।

गांधी जी के जीवन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे निडर लीडर थे। अपने विचारों को दृढ़ता के साथ रखते थे। सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, सर्वोदय, स्वराज, सत्याग्रह, धर्म, न्याय आदि विषयों पर अपने विचारों से सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। गांधी जी अपने विचारों को न केवल दृढ़ता एवं आग्रह के साथ रखते थे बल्कि अपने आचरण के द्वारा भी उनका पुष्टिकरण करते थे। 1915 में भारत में आने से पूर्व दक्षिण अफ्रीका में 20 वर्ष तक लगातार संघर्ष किया। भारत में आते ही वे किसी आंदोलन से नहीं जुड़े। उनका कहना था कि मैं किसी संगठन में तभी शामिल हो सकता हूँ जब मैं उसकी नीतियों को प्रभावित करूं। मैं उनकी नीतियों से प्रभावित होने के लिए उसमें शामिल नहीं होऊंगा।

गांधी का राष्ट्रीयता के बारे में स्पष्ट कहना था कि मैं सबसे पहले भारतीय, फिर गुजराती एवं तब जाकर काठियावादी हूँ। आज इसी धारणा को अपनाने की आवश्यकता है। हम प्रांत, क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर यह सोचें कि हम सबसे पहले भारतीय हैं, तत्पश्चात् कुछ और।

गांधी एवं अहिंसा

गांधी का यह कहना था कि अहिंसा ऐसी शक्ति है जिसे सब साध सकते हैं। अहिंसा को जीवन का नियम मान लेने पर यह सिर्फ व्यक्ति के कुछ कृत्यों पर ही लागू न हों अपितु सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अनुप्राणित करने वाली होनी चाहिए।

गांधी जी के जीवन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे निडर लीडर थे। अपने विचारों को दृढ़ता के साथ रखते थे। सत्य, अहिंसा, स्वदेशी, सर्वोदय, स्वराज, सत्याग्रह, धर्म, न्याय आदि विषयों पर अपने विचारों से सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित किया। गांधी जी अपने विचारों को न केवल दृढ़ता एवं आग्रह के साथ रखते थे बल्कि अपने आचरण के द्वारा भी उनका पुष्टिकरण करते थे।

गांधी जी के अनुसार अहिंसा के मार्ग का प्रथम कदम यह है कि हम अपने दैनिक जीवन में सहिष्णुता, सच्चाई, विनम्रता, प्रेम और दयालुता का व्यवहार करें।

गांधीजी ने अहिंसा के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा कि अहिंसा की बात सभी धर्मों में है, लेकिन इसे सर्वोच्च अभिव्यक्ति हिन्दू धर्म में मिली है। हिन्दू धर्म समस्त प्राणी जगत को एक मानता है। उनका कहना थ कि अहिंसा साधन है और सत्य साध्य। यदि हम साधन को ठीक रखें तो देर सवेर साध्य तक पहुंच ही जाएंगे। एक बार इस सूत्र को समझ जाएं, तो अंतिम विजय असंदिग्ध है।

गांधी जी का कहना था कि अहिंसा वीर का सर्वोच्च गुण है। यह कायरता का आड़ नहीं है। कायरता एवं अहिंसा का कोई मेल नहीं है। अहिंसा वीर का सर्वोच्च गुण है। उनका कहना था कि ''पाप से घृणा करो पानी से नहीं।'' गांधी जी की मान्यता थी कि अहिंसा से डर का कोई स्थान नहीं है। जिस तरह हिंसा के प्रशिक्षण में मारने की कला सीखना आवश्यक है, उसी तरह अहिंसा के प्रशिक्षण में मरने की कला सीखना आवश्यक है। गांधी जी कहते थे कि कायर को अहिंसा का पाठ नहीं पढ़ाया जा सकता।

गांधी एवं स्वदेशी

गांधी स्वदेशी को एक धार्मिक नियम मानते हैं जिसका पालन शारीरिक कष्टों के बावजूद भी होना ही चाहिए। स्वदेशी का व्रत लेने वाला ऐसी सैकड़ों चीजों के बिना भी अपना काम चलाना सीख लेगा, जिन्हें आज वह अपने लिए आवश्यक समझता है। गांधी जी स्वदेशी को देशभक्ति मानते हैं। इसलिए कहते हैं कि देशभक्ति के लिए स्वदेशी को अपनाना चाहिए। स्वदेशी धर्म का पालन करने वाला मनुष्य विदेशियों से कभी द्वेष करेगा ही नहीं। स्वदेशी संकुचित नहीं, विशाल और उदार धर्म है। वह प्रेम से, अहिंसा से उत्पन्न हुआ सुन्दर धर्म है। यह एक महान जीवन सिद्धांत भी है। स्वदेशी उनका प्रथम एवं अंतिम संदेश था। गांधी जी स्वदेशी के माध्यम से स्वावलम्बन लाना चाहते थे।

गांधी एवं सर्वोदय

गांधी जी के सर्वोदय का सिद्धांत राज्य के लक्ष्य की अवधारणा से संबंधित है। सर्वोदय के सिद्धांत का शाब्दिक अर्थ है – सबकी भलाई, सबका कल्याण और सबका उत्थान। गांधी जी के अनुसार राज्य का आदर्श होना चाहिए सभी लोगों के जीवन के सभी क्षेत्रों में भलाई अथवा कल्याण। गांधी जी का मानना था कि राज्य को बहुमत का कल्याण अल्पमत की कीमत पर नहीं करना चाहिए। ऐसे ही अल्मत का कल्याण बहुमत की कीमत पर नहीं करना चाहिए। अल्पमत की बहुमत की कीमत पर भलाई उतनी ही अनैतिक होगी जितनी बहुमत की अल्पमत की कीमत पर।

स्वराज की कल्पना आज भी अधूरी है। हम स्वतंत्र तो हो गए लेकिन स्वराज अभी आना है। गांधी जी के लिए स्वराज का अर्थ था कि व्यक्ति के अंतःकरण एवं आत्मा आत्मा की शुद्धि। उनकी मान्यता थी कि स्वस्थ समाज के अभाव में राजनैतिक चेतना एवं आर्थिक स्वावलम्बन की कल्पना नहीं की जा सकती इसलिए उन्होंने स्वराज प्राप्ति के लिए संकीर्णता, अन्याय एवं पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण से मुक्त समाज की रचना पर बल दिया।

गांधी जी धर्मनिरपेक्षता के पक्षधर थे। इसलिए उन्होंने कहा राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा। समस्त धर्मों एवं उनके मानने वालों की समानता में राज्य की आस्था होगी। किसी धर्म या पूजा स्थल को बढ़ावा देने या उसका निर्माण करना धर्मनिरपेक्ष राज्य का कार्य नहीं है। इसलिए राज्य कोई ऐसा धार्मिक कर नहीं लगाए, जिससे किसी धर्म विशेष को बढ़ावा मिलता हो। गांधी जी रामराज्य की स्थापना के पक्षधर थे। उनका आदर्श था ''वसुधैव कुटुम्बकम्।''

गांधी चाहते थे कि राज्य नागरिकों की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं खुशहाली का ध्यान रखे। न्यायपालिका निष्पक्ष रहे। गांधी जी चाहते थे कि राज्य का काम लोगों के रास्ते की बाधाओं को दूर करना है न कि राज्य लोगों के मार्ग में स्वयं एक बाधा बनकर खड़ा हो जाए। इसी नीति से सर्वोदय का मार्ग प्रशस्त होगा।

गांधी जी एवं स्वराज

स्वराज की कल्पना आज भी अधूरी है। हम स्वतंत्र तो हो गए लेकिन स्वराज अभी आना है। गांधी जी के लिए स्वराज का अर्थ था कि व्यक्ति के अंतःकरण एवं आत्मा आत्मा की शुद्धि। उनकी मान्यता थी कि स्वस्थ समाज के अभाव में राजनैतिक चेतना एवं आर्थिक स्वावलम्बन की कल्पना नहीं की जा सकती इसलिए उन्होंने स्वराज प्राप्ति के लिए संकीर्णता, अन्याय एवं पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण से मुक्त समाज की रचना पर बल दिया।

गांधी जी के लिए स्वराज का अर्थ था 'ईश्वर का राज्य।' गांधी ने कहा सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है। उन्होंने कहा सत्य की साधना त्याग से ही संभव है। अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, सर्वधर्म

सम्मान, ब्रह्मचर्य, अभय आदि इसमें संगी हैं। उनके मतानुसार सत्य का पालन करने वाला व्यक्ति कष्ट सह सकता है लेकिन अपने मार्ग को बदल नहीं सकता।

गांधी जी साधन एवं साध्य की शुद्धता में विश्वास रखते थे। उनका कहना था कि यदि स्वराज की प्राप्ति हिंसात्मक साधनों द्वारा हो, तो ऐसा स्वराज भी हिंसात्मक होगा। गांधी जी ''राजनीति में सब कुछ वांछनीय है'' की बात नहीं मानते थे। वे कहते थे कि शोषण एवं उत्पीड़न से मुक्त अहिंसात्मक समाज जैसे साध्य की प्राप्ति के लिए साधन भी अहिंसात्मक होने चाहिए।

स्वराज में गांधी हिन्दू मुस्लिम एकता के हामी थे। उनका मानना था कि हिन्दू मुस्लिम एकता ही स्वराज है। हिन्दू मुस्लिम एकता कायम करने के लिए उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव पर जोर दिया। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए इसे रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बनाया। गांधीजी स्वराज में आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था चाहते थे। गांधी जी का मानना था कि गांवों का शोषण अपने आप में एक संगठित हिंसा है। गांव स्वराज के आधार पर गांव आत्मनिर्भर बन सकते हैं। गांव की आवश्यकता गांव के उत्पादन से ही पूरी हो, लोगों को रोजगार के लिए गांव से बाहर नहीं जाना पड़े, गांवों के विवादों का निपटारा भी गांव स्तर पर ही हो, ऐसी व्यवस्था ही ग्राम स्वराज है। उनका कहना था कि प्रत्येक गांव में पंचायती राज की व्यवस्था होगी। गांधी जी राजनैतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण करना चाहते थे। स्वराज रूपी साध्य के लिए गांधी जी ने स्वदेशी को एक वैधानिक साधना के रूप में स्वीकार किया।

गांधी जी एवं सत्याग्रह

सत्याग्रह का अर्थ है सत्य के लिए आग्रह करना – सत्य के लिए अड़े रहना। गांधी जी के अनुसार सत्याग्रह अन्याय के खिलाफ एक ऐसा अहिंसक संघर्ष है जिसमें मन, वचन तथा कर्म से हिंसा का त्याग करके, अहिंसा को एक सिद्धांत रूप में स्वीकार किया जाता है। गांधी जी की मान्यता थी कि सत्याग्रह नैतिक रूप में सक्षम, सक्रिय व सर्तक लोगों के द्वारा किया जाने वाला संघर्ष है, न कि असहाय, कायर तथा डरपोक लोगों।

गांधी जी का कहना था कि अपनी गलती के लिए अपने आपको दण्डित करे न कि अपने विरोधियों को। इसीलिए उन्होंने 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तक में कहा 'आत्म बलिदान पर बलिदान से श्रेष्ठ है।' सत्याग्रह किसी नीति, कानून व्यवस्था अथवा व्यवहार विशेष के विरूद्ध संघर्ष तक ही सीमित नहीं है अपितु सत्याग्रह सोचने और जीने का एक ऐसा मार्ग है जो हमें सत्य तथा न्याय के मार्ग पर प्रशस्त करता है। असत्य, अन्याय तथा बुराई पर वार करता है एवं तथाकथित शत्रु का हृदय परिवर्तन कर उसे मित्र बना देता है।

सत्याग्रह अत्याचारी, सत्याग्रही तथा सामान्य व्यक्ति सभी का समान रूप से उद्धार करता है, उन्हें जागरूक एवं शिक्षित बनाता है और उनके जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाता है। सत्याग्रह एक ऐसा माहौल पैदा करता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने विवेक तथा आत्मा की आवाज को सुनकर सभी समस्याओं एवं विवादों का अहिंसक तथा स्थायी समाधान निकाल सकता है और एक ऐसे विकल्प पर पहुंच सकता है जो अंततः सबको मान्य हो।

गांधीजी ने अपने जीवनकाल में सत्याग्रह का प्रयोग अनेक बार किया। विशेषकर दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद की नीति एवं भारत में ब्रिटिश तथा देशी सामंतवादी शासन व्यवस्थाओं का विरोध करने के लिए किया।

गांधीजी स्वराज में आत्मनिर्भर ग्रामीण व्यवस्था चाहते थे। गांधी जी का मानना था कि गांवों का शोषण अपने आप में एक संगठित हिंसा है। गांव स्वराज के आधार पर गांव आत्मनिर्भर बन सकते हैं। गांव की आवश्यकता गांव के उत्पादन से ही पूरी हो, लोगों को रोजगार के लिए गांव से बाहर नहीं जाना पड़े, गांवों के विवादों का निपटारा भी गांव स्तर पर ही हो, ऐसी व्यवस्था ही ग्राम स्वराज है। उनका कहना था कि प्रत्येक गांव में पंचायती राज की व्यवस्था होगी।

गांधी जी एवं धर्म

गांधी जी एक आध्यात्मिक व्यक्ति थे। गांधी जी ने कहा ''मानव जाति की सेवा करके उसके द्वारा मैं ईश्वर से साक्षात्कार करने का ही प्रयत्न करता हूं क्योंकि मैं जानता हूं कि ईश्वर न तो ऊपर स्वर्ग में है और न यहां नीचे अपितु हर एक के अंदर एक विराजमान है।''

उन्होंने यह भी कहा कि जब–जब मेरे सामने कोई दिक्कत उपस्थित हुई तब–तब मैंने गीता का ही सहारा लिया और उसी से मुझे सांत्वना मिली।

गांधी जी के लिए धर्म एवं नैतिकता में कोई अंतर नहीं था। गांधी जी यह मानते थे कि सभी धर्म एक ही जगह पर ले जाने

वाले अलग–अलग मार्ग हैं। वे धर्म परिवर्तन के विरोधी थे। उन्होंने कहा हिन्दू को अच्छा हिन्दू, मुसलमान को अच्छा मुसलमान एवं ईसाई को अच्छा ईसाई बनना चाहिए। गांधी जी धर्म के 10 लक्षणों को जीवन में अपनाने पर जोर देते थे। गांधी जी ने किसी को अपना दुश्मन नहीं माना, सबको भाई–भाई बनने की शिक्षा दी।

गांधी जी एवं राष्ट्रवाद

गांधी जी एक सच्चे देशभक्त एवं राष्ट्रवाद थे। उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में उनकी राष्ट्रवादिता, स्वदेशाभिमान और स्वदेशोद्धार की बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उन्हीं के शब्दों में ''मैं मानता हूँ कि जो सभ्यत हिन्दुस्तान की है उस तक दुनिया में कोई नहीं पहुंच सकता। गांधी जी को श्रद्धांजलि देते हुए श्री कन्हैयालाल माणिक लाल मुशी ने कहा ''गांधीजी ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में संगठित किया, स्वाधीनता संग्राम का नेतृत्व किया, उन्होंने दासों को मनुष्य बनाया, समाज से अस्पृश्यता का विनाश किया। उन्होंने भारतीयों में अपनी संस्कृति में अभिमान एवं अपनी शक्ति में विश्वास जागृत किया और उसे पुनः प्रतिष्ठित किया। भारत ने उनको 'राष्ट्रपति' शब्द से सम्बोधित किया, जो उनकी राष्ट्र–भक्ति का द्योतक है। गांधी जी की राष्ट्रीयता संकीर्ण नहीं थी।

उनका विश्वास था कि बिना राष्ट्रवादी हुए अंतर्राष्ट्रवादी होना असंभव है। अंतर्राष्ट्रवाद तभी संभव है जबकि राष्ट्रवाद सत्य बन जाता है। उनका स्पष्ट मत था कि राष्ट्रप्रेम ही अन्याय तथा अत्याचार के सामने घुटने न टेकने की शक्ति प्रदान करता है। वे कहते थे कि राष्ट्रीय एकता के लिए त्याग, सहयोग, पौरूष, बंधुत्व, प्रेम जैसे गुणों की आवश्यकता है। उनका कहना था कि अपने देश की सेवा दुनिया की सेवा से असंगत नहीं है। उनके शब्दों में – मेरे लिए देश भक्ति और मानवता समान है। मैं देशभक्त हूं क्योंकि मैं मानव हूं और उदारमय हूं। गांधी जी कहते हैं कि जब मैं राष्ट्र की सेवा करने में ही सक्षम नहीं हूं तो मानवता की सेवा करने का विचार ही धृष्टता है।

गांधी जी कहते थे कि देश आत्मनिर्भर बने। यह तभी संभव है जब स्वदेशी को अपनाया जावे। स्वदेशी उनका प्रथम एवं अंतिम संदेश था। गांधी जी स्वदेशी के द्वारा स्वावलम्बन लाना चाहते थे। कुटीर उद्योग धंधों पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन करना चाहते थे जिसके अंतर्गत प्रत्येक गांव एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करे।

गांधी जी एवं अर्थव्यवस्था

गांधी एक स्वदेशी एवं विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के पक्षधर थे। गांधी जी के आर्थिक विचारों पर नैतिक मूल्यों का अधिक प्रभाव था इसलिए वे अर्थशास्त्र एवं नैतिक मूल्यों को परस्पर विरोधी नहीं मानते थे। उन्हीं के शब्दों में ''मुझे स्वीकार करना चाहिए कि मैं अर्थ विद्या एवं नीति विद्या में भेद ही नहीं करता। जिस अर्थ विद्या से व्यक्ति या राष्ट्र के नैतिक कल्याण को हानि पहुंचती हो उसे अनीतिमय एवं पापपूर्ण कहूंगा।

गांधी जी कहते थे कि देश आत्मनिर्भर बने। यह तभी संभव है जब स्वदेशी को अपनाया जावे। स्वदेशी उनका प्रथम एवं अंतिम संदेश था। गांधी जी स्वदेशी के द्वारा स्वावलम्बन लाना चाहते थे। कुटीर उद्योग धंधों पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन करना चाहते थे जिसके अंतर्गत प्रत्येक गांव एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करे। स्वराज रूपी साध्य के लिए गांधीजी स्वदेशी को एक वैधानिक साधन के रूप में स्वीकार किया। स्वदेशी अर्थव्यवस्था के लिए गांधी जी ने खादी एवं चरखे को महत्वपूर्ण बताया। गांधीजी ने एक विकेन्द्रित ग्राम्याधारित स्वचालित एवं सहिष्णुता एवं त्यागपरक अर्थतंत्र को प्राथमिकता दी।

गांधी जी आधुनिकीकरण एवं मशीनीकरण के विरोधी नहीं थे लेकिन इससे होने वाले दुष्परिणामों के विरोधी थे। गांधी जी लघु एवं कुटीर उद्योगों के माध्यम से विकास करना चाहते थे जिससे बढ़ती हुई बेरोजगारी एवं शहरीकरण की प्रवृत्ति को रोका जा सके।

गांधी जी ने कहा मेरे सपनों का स्वराज तो गरीबों का स्वराज होगा। हमारा स्वराज तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक वह गरीबों को समस्त सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता।

गांधी जी एक व्यक्ति नहीं बल्कि एक संस्था थे। जीवन का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं था जिस पर उन्होंने अपने विचार प्रकट नहीं किए हों। गांधी जी को हम आज न केवल भुलाते जा रहे हैं अपितु उनके नाम पर अनैतिक काम भी कर रहे हैं। आज गांधीवाद के नहीं बल्कि गांधी जी के विचारों पर आचरण करने की आवश्यकता है। गांधी जी को सच्ची श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उनके विचारों को अपने जीवन में अपनाएं एवं दूसरों को भी इसके लिए प्रेरित करें।❑

विदेशी निवेश - संसाधनों की लूट

एक सवाल यह भी है कि पिछले आठ वर्षों से लोगों का घोर विरोध, सामाजिक व मानवाधिकार संगठनों की आपत्तियों और अनेक सरकारी मान्यता प्राप्त समितियों की प्रतिकूल रिपोर्ट झेलने के बाद भी पोस्को इस प्रोजेक्ट को छोड़ क्यों नहीं रही है। उत्तर स्पष्ट है कि इसके साथ मोटा मुनाफा जुड़ा है और इस मुनाफे का मुख्य स्रोत तब उत्पन्न होता है जब स्टील प्लांट के साथ लौह अयस्क की खदानें जुड़ जाती हैं, जैसा कि मूल परियोजना में कहा गया है। ऐसे में पोस्को को भारी मात्रा में लौह अयस्क मिल जाएगा।

■ भारत डोगरा

दक्षिण कोरिया की बहुराष्ट्रीय कंपनी की ओडिशा स्थित पोस्को स्टील परियोजना देश में सबसे बड़े विदेशी निवेश के प्रोजेक्ट के रूप में प्रचारित है। लेकिन कड़वी सच्चाई यह है कि आरंभ से ही यह परियोजना विवादास्पद रही है। हाल में पर्यावरण मंत्रालय द्वारा हरी झंडी मिल जाने के बावजूद यह तीखे सवालों से घिरी है। सबसे बड़ा सवाल यही है कि यह विकास परियोजना है या संसाधनों की लूट।

एक सवाल यह भी है कि पिछले आठ वर्षों से लोगों का घोर विरोध, सामाजिक व मानवाधिकार संगठनों की आपत्तियों और अनेक सरकारी मान्यता प्राप्त समितियों की प्रतिकूल रिपोर्ट झेलने के बाद भी पोस्को इस प्रोजेक्ट को छोड़ क्यों नहीं रही है। उत्तर स्पष्ट है कि इसके साथ मोटा मुनाफा जुड़ा है और इस मुनाफे का मुख्य स्रोत तब उत्पन्न होता है जब स्टील प्लांट के साथ लौह अयस्क की खदानें जुड़ जाती हैं, जैसा कि मूल परियोजना में कहा गया है। ऐसे में पोस्को को भारी मात्रा में लौह अयस्क मिल जाएगा। इस समग्र परियोजना के लिए पर्यावरणीय व अन्य स्वीकृति प्राप्त करने के स्थान पर इसे अलग–अलग हिस्सों में विभाजित कर स्वीकृति दिलवाने के प्रयास हो रहे हैं।

फिलहाल इसके पीछे यही सोच है कि तमाम विरोध झेलते हुए किसी तरह एक बार स्टील प्लांट लग जाए तो फिर जोड़–तोड़ कर खदान की मंजूरी भी प्राप्त कर ही ली जाएगी। जानकार सूत्र मानते हैं कि बात यहीं तक सिमटने वाली नहीं है। अपनी इस परियोजना के लिए यह बहुराष्ट्रीय कंपनी नए बंदरगाह को भी जरूरी मानती है साथ ही महानदी की विशाल जल–राशि का दोहन भी करना चाहती है। लेकिन खनन से जहां बहुत से आदिवासियों के विस्थापन व पर्यावरण तबाही के खतरे जुड़े हैं, वहीं बंदरगाह निर्माण से मछुआरों की आजीविका संकटग्रस्त हो जाएगी।

यही नहीं, नदी का पानी स्टील प्लांट की ओर मोड़ने पर स्थानीय कृषि की सिंचाई पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। किसी परियोजना का सही मूल्यांकन हो, इसके लिए राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल पहले ही कह चुका है कि परियोजना को समग्र रूप से प्रस्तुत किया जाना चाहिए, अलग–अलग हिस्सों में बांट कर नहीं। पर कुछ कंपनियां चाहती हैं कि जल्द से जल्द पहले एक हिस्से को स्वीकृति दिला दी जाए फिर दूसरे हिस्से को।

हालांकि राष्ट्रीय ग्रीन ट्रिब्यूनल की हिदायत है कि कंपनी वन कानून के तहत राज्य सरकार की अनुमति के बिना पेड़ नहीं काट सकती है। राज्य में केवल स्टील प्लांट लगाने के लिए जो 2800 एकड़ भूमि जरूरी समझी गयी है, पहले उसके लिए 4000 एकड़ का प्रस्ताव था। गांववासियों व किसानों, विशेषकर पान की खेती करने वालों ने इसका तीखा विरोध किया है।

सवाल है कि ऊंचे मुनाफे की चाह के लिए किसी विदेशी कंपनी के हाथों हजारों लोगों की टिकाऊ आजीविका व आवास क्यों छीने जाएं और पर्यावरण क्यों बिगाड़ा जाए! जितनी समस्याएं व क्षति केवल इस स्टील प्लांट के साथ जुड़ी हैं, उससे कई गुना संघर्ष तब बढ़ेगा जब खनन, बंदरगाह, जल–उपलब्धि आदि को एक साथ जोड़कर देखा जाए। इन सारी समस्याओं के मद्देनजर जरूरत इस बात की है इस विवादास्पद परियोजना को तरह–तरह की तिकड़मों के बल पर आगे न बढ़ाया जाए अपितु इसका निष्पक्ष मूल्यांकन होने के बाद ही इसके बारे में अंतिम निर्णय लिया जाए।

पान की खेती वाले किसान एक से तीन वर्ष में जितनी कमा लेते हैं, उसके बदले उन्हें अपनी पान की खेती वाली विशिष्ट भूमि सदा के लिए छोड़ देने को कहा गया है। पान की खेती के साथ धान की खेती करने वाले किसानों ने भी मेहनत और कुशलता से क्षेत्र की अर्थव्यवस्था मजबूत की है। उन्हें उजाड़ने के अतिरिक्त इस परियोजना के नाम पर बड़ी संख्या में पेड़ कटेंगे जो तटीय क्षेत्र में समुद्री तूफानों से रक्षा के लिए लगाए गए हैं। यहां किसानों व गांववासियों के लंबे संघर्षों के दौरान जो सवाल उठे हैं, उन्हें समय–समय पर सरकारी मान्यता प्राप्त पर स्वतंत्र रिपोर्ट का भी समर्थन मिला है। अनेक मानवाधिकार व सामाजिक संगठनों की रिपोर्ट में इन संघर्षों को न्यायोचित बताया गया है। इसके बावजूद केंद्र व राज्य सरकार ने लगातार प्रयास किया है कि किसी तरह इस परियोजना को स्वीकृति मिल जाए, साथ ही इससे जुड़ी खनन परियोजना को भी स्वीकृति मिल जाए। यह भी कहा जाता रहा है कि पिछले आठ वर्षों से जब से यह परियोजना अस्तित्व में आई है, तभी से इन समृद्ध व शांत गांवों का जीवन पुलिस उत्पीड़न, धमकियों, हिंसक घटनाओं, मुकदमेबाजी व जेल यात्राओं की भेंट चढ़ रहा है। दूसरी ओर जो गांववासी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के दबदबे को मान गांव छोड़ गए, उनका अनुभव भी बहुत प्रतिकूल रहा है। खुले घर–गांवों के समृद्ध किसानों को तंग शिविरों में रहकर मजदूरी करनी पड़ी। उन्हें कुछ भत्ता अवश्य मिला जो बहुत कम सिद्ध हुआ। यदि सरकार को बेहतर आर्थिक क्षतिपूर्ति करनी है तो मूल मुद्दा मुआवजे का नहीं है।

सवाल है कि ऊंचे मुनाफे की चाह के लिए किसी विदेशी कंपनी के हाथों हजारों लोगों की टिकाऊ आजीविका व आवास क्यों छीने जाएं और पर्यावरण क्यों बिगाड़ा जाए! जितनी समस्याएं व क्षति केवल इस स्टील प्लांट के साथ जुड़ी हैं, उससे कई गुना संघर्ष तब बढ़ेगा जब खनन, बंदरगाह, जल–उपलब्धि आदि को एक साथ जोड़कर देखा जाए। इन सारी

समस्याओं के मद्देनजर जरूरत इस बात की है इस विवादास्पद परियोजना को तरह–तरह की तिकड़मों के बल पर आगे न बढ़ाया जाए अपितु इसका निष्पक्ष मूल्यांकन होने के बाद ही इसके बारे में अंतिम निर्णय लिया जाए।

फिलहाल इसके पीछे यही सोच है कि तमाम विरोध झेलते हुए किसी तरह एक बार स्टील प्लांट लग जाए तो फिर जोड़–तोड़ कर खदान की मंजूरी भी प्राप्त कर ही ली जाएगी। जानकार सूत्र मानते हैं कि बात यहीं तक सिमटने वाली नहीं है। अपनी इस परियोजना के लिए यह बहुराष्ट्रीय कंपनी नए बंदरगाह को भी जरूरी मानती है साथ ही महानदी की विशाल जल–राशि का दोहन भी करना चाहती है।

स्थिति स्पष्ट है कि इसके समग्र मूल्यांकन के लिए जरूरी जानकारियां अब तक उपलब्ध ही नहीं हैं। ऐसी प्रामाणिक जानकारियां जुटाने के बाद उन्हें पंचायतों व ग्राम सभाओं को उपलब्ध कराना जरूरी है व उनकी इस बारे में राय जानना भी जरूरी है। इस प्रक्रिया को पूरी करने के बाद ही परियोजना के बारे में कोई न्यायसंगत निर्णय लिया जा सकता है। इन प्रक्रियाओं की अवहेलना क्यों हुई है और इन्हें पूरी किए बिना विभिन्न स्तरों पर इसकी स्वीकृति के लिए केंद्र व राज्य सरकार ने क्यों जोर लगाया है, इसकी निष्पक्ष जांच जरूरी है।

परियोजना से जुड़ी भ्रष्टाचार की संभावनाओं पर भी पैनी नजर रखना बहुत जरूरी है। इससे भी बड़ा बुनियादी सवाल यह कि प्रचुर मात्रा में बेशकीमती खनिज संपदा आखिर एक विदेशी कंपनी को सौंप देने की इतनी जल्दबाजी सरकार को क्यों है? नियम–कानून भुला संदिग्ध उपयोगिता व तबाही वाली ऐसी परियोजनाओं का केंद्र व राज्य सरकार क्यों स्वागत करने लगती हैं! ❑

जनहित की जीत

राजस्थान और दिल्ली में एफडीआई पर रोक

राजस्थान की भाजपा सरकार ने भी दिल्ली की आम आदमी पार्टी सरकार की तरह खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश के फैसले को वापस ले लिया. . . .खुदरा में एफडीआई लागू होने के बाद इसे केवल देश के कांग्रेस शासित राज्यों ने लागू करने पर सहमति जताई थी, लेकिन लगता है, जैसे–जैसे कांग्रेस राज्यों में सत्ता से बाहर होगी, वैसे–वैसे एफडीआई नकार दिया जाएगा। क्योंकि यह नीतिगत फैसला व्यापक जनहित की बजाय चंद विदेशी कंपनियों के ही हित में है। इसलिए शेष रहे, 10 राज्यों से भी खुदरा में विदेशी निवेश की वापसी जरूरी है?

■ प्रमोद भार्गव

राजस्थान की भाजपा सरकार ने भी दिल्ली की आम आदमी पार्टी सरकार की तरह खुदरा व्यापार में प्रत्यक्ष विदेशी पूंजी निवेश के फैसले को वापस ले लिया। इससे पहले दिल्ली की मुख्यमंत्री शीला दीक्षित और राजस्थान की अशोक गहलोत सरकारें किराना व्यापार में एफडीआई के लिए पलक–पांवड़े बिछाने में अव्वल थीं। करीब 25 करोड़ लोगों की रोजी–रोटी से जुड़ा होने के कारण यह मुद्दा हमेशा ही विवादास्पद रहा है। बावजूद घोर राजनीतिक मतभेदों के चलते मई 2012 में केंद्र सरकार ने इसके पक्ष में फैसला ले लिया।

फैसला लेते वक्त कांग्रेस सरकार ने न केवल संसद की स्थायी समिति की सिफारिश को रद्दी की टोकरी में डाल दिया था, बल्कि संप्रग के सहयोगी दलों की भी अनदेखी की थी। तृणमूल कांग्रेस, द्रमुक, झारखंड विकास मोर्चा, सपा और बसपा खुदरा में विदेशी निवेश के विरोध में थे। तृणमूल कांग्रेस ने तो इस नीतिगत फैसले के विरोध में सरकार से समर्थन तक वापस ले लिया था और संसद में प्रस्ताव पर मत विभाजन के समय नाटकीय अंदाज में सपा और बसपा ने सदन का बहिष्कार कर दिया था।

जाहिर है, बहुब्रांड में एफडीआई की 51 फीसद मंजूरी राजनीतिक जोड़–तोड़ का परिणाम थी। लिहाजा निवेश के खिलाफ जा रही राज्य सरकारों पर यह आरोप नहीं लगाया जा सकता है कि संसद में नीतिगत निर्णय लेने के बाद, नीति पलटना कानून सम्मत नहीं है। राज्य सरकारों द्वारा नीति को पलटना इसलिए भी गलत नहीं है, क्योंकि प्रस्ताव के प्रारूप में यह शर्त जुड़ी हुई है कि राज्य सरकारें खुदरा में विदेशी निवेश स्वीकार करने अथवा न करने के लिए स्वतंत्र हैं?

खुदरा में एफडीआई लागू होने के बाद इसे केवल देश के कांग्रेस शासित राज्यों ने लागू करने पर सहमति जताई थी, लेकिन लगता है,जैसे–जैसे कांग्रेस राज्यों में सत्ता से बाहर होगी, वैसे–वैसे एफडीआई नकार दिया जाएगा। क्योंकि यह नीतिगत फैसला व्यापक जनहित की बजाय चंद विदेशी कंपनियों के ही हित में है। किराना मसलन परचून की स्थायी दुकानें चलाने वालों के अलावा इस खुदरा व्यापार से पटरी, हाथ–ठेला, हाट बाजार के साथ फल व सब्जियों के कारोबारी भी जुड़े हैं। इन कारोबारियों की संख्या दो करोड़ के करीब है। इनके परिजनों की आजीविका भी इसी कारोबार पर निर्भर है। इस लिहाज से यह संख्या 25 करोड़ के आसपास बैठती है। तय है, इतने लोगों के पेट पर लात मारने का फैसला राजनीतिगत भले ही हो, न्यायसंगत एवं व्यावहारिक कतई नहीं हैं? इसलिए शेष रहे, 10 राज्यों से भी खुदरा में विदेशी निवेश की वापसी जरूरी है?

दो राज्यों से एफडीआई की वापसी के परिप्रेक्ष्य में यह मौलिक प्रश्न खड़ा करने की कोशिश की जा रही है कि हमारे देश में नीतिगत स्थिरता है अथवा नहीं? दिल्ली की शीला दीक्षित सरकार ने तो राजपत्र में अधिसूचना तक जारी कर दी थी। ऐसे में अल्पमत वाली आम आदमी पार्टी सरकार बहुमत वाली सरकार के

हम सहकारिता एवं स्वसहायता समूहों को प्रोत्साहित करें। जैसे कि अन्ना हजारे ने रालेगण सिद्धी समेत अनेक गांवों को आत्मनिर्भर बनाया हैं। अपने देश में उद्यमियों की कमी नहीं है, बशर्ते, उन्हें अनुकूल माहौल मिले। डॉ. कुरियन वर्गीस ने तो दूध जैसे खराब हो जाने वाले रोजमर्रा के अनिवार्य अमूल्य पेय पदार्थ को अंतरराष्ट्रीय स्तर का अमूल दुग्ध ब्रांड बना दिया। देश में स्वदेशी उद्यमियों द्वारा उत्पादित हो रहे ऐसे ही अन्य अनेक ब्रांड भी इस कड़ी का हिस्सा हैं। कहने का आशय इतना भर है कि हम स्वदेशी उत्पादों को महत्व दें और बाजार में इन्हीं ब्रांडों को प्रोत्साहित करें।

फैसले को कैसे बदल सकती है? इससे विदेशी पूंजी निवेशक असंमजस में रहेंगे और इन राज्यों की देखादेखी अन्य राज्यों में भी पूर्ववर्ती सरकारों के फैसले बदलने की परंपरा शुरू हो जाएगी।

ऐसे ही दुविधाओं के चलते मल्टी ब्रांड रिटेल में एफडीआई की स्वीकृति मिलने के बावजूद एक साल तक किसी भी कंपनी ने भारत में खुदरा के भंडार खोलने का रुख तक नहीं किया। केंद्र सरकार द्वारा रियायतों का पिटारा खोलने के बाद बमुश्किल ब्रिटेन की टेस्को कंपनी भारत में किराना दुकानें चलाने के लिए तैयार हुई है। केंद्र ने इसे अनुमति भी दे दी है। टेस्को ने टाटा समूह की कंपनी टेंट हाइपर मार्केट लिमिटेड के साथ किराना श्रृंखला खोलने का अनुबंध किया है। जाहिर है, टेस्को के सामने दिल्ली, जयपुर, उदयपुर, जोधपुर और कोटा जैसे शहर और उनके उपभोक्ता रहे होंगे? तय है, पूर्ववर्ती सरकारों के फैसले बदले जाते हैं, तो निवेश प्रभावित होगा और पूंजीवादी अर्थव्यस्था को झटका लगेगा ?

यहां गौरतलब है कि केंद्र की लोकतंत्रिक सरकार को इतना बड़ा फैसला लेने से पहले, व्यापक जनहित का ख्याल रखने की भी जरूरत थी, जो उसके द्वारा नहीं रखा गया। यह भी गौरतलब है कि केंद्र सरकार को यह फैसला लेते वक्त न दलीय आधार पर बहुमत प्राप्त था और न ही सांसदों का बहुमत तय करने वाला संख्या बल उनके साथ था? क्योंकि मत विभाजन के समय सपा और बसपा के सांसद सदन से बर्हिगमन कर गए थे।

जाहिर है, जनता के हितों से बेपरवाह सरकार का यह फैसला ज्यादातर लोगों की राय में सियासी नफा–नुकसान का नतीजा था, अलबत्ता खुदरा में एफडीआई के फैसले को यदि हमारे राजनेता सबक मानते हैं तो भविष्य में इतना जरूर होगा कि नेता प्रजाहित को प्राथमिकता देंगे। खुदरा में विदेशी पूंजी निवेश को भारत का आधारभूत ढांचा खड़ा करने के लिए इसके पैरोकार इसे जरूरी बताते रहे हैं। ताकि कोल्ड स्टोरेज और

अनाज भंडार गृहों की श्रृंखला खड़ी की जा सके। अपने देश में इन्हीं के अभाव में तो बेहिसाब फल व सब्जी तथा करोड़ों टन अनाज सड़ जाता है, बर्बाद हो जाता है। लेकिन अमेरिका समेत तमाम यूरोपीय देशों में वालमार्ट की दुकानें होने के बावजूद वहां भी 40 फीसद अनाज और 50 फीसद फल व सब्जियां खराब हो जाते हैं।

सबसे बड़ा सवाल यह है कि जब अपने ही देशों में ये कंपनियां खाद्यान्न और फल–सब्जी की बर्बादी नहीं रोक पा रही हैं, तो भारत में किस तरह करिश्मा कर पाएंगी? जहां तक एडीआई के माध्यम से लोगों की आजीविका और रोजगार से जुड़ने का सवाल है तो अमेरिका में 450 अरब डॉलर की वॉलमार्ट महज 21 लाख लोगों को ही रोजगार दे रही है, जबकि भारत में 460 अरब डॉलर का खुदरा कारोबार करीब पांच करोड़ लोगों को सीधा रोजगार दे रहा है और 25 करोड़ लोगों की रोटी का आधार बना हुआ है। जाहिर है, भारत में वॉलमार्ट, टेस्को और केयरफॉर जैसी खुदरा व्यापार की इच्छुक कंपनियों को बाहर का ही रास्ता दिखा दिया जाना चाहिए।

इसके बजाय हम सहकारिता एवं स्वसहायता समूहों को प्रोत्साहित करें। जैसे कि अन्ना हजारे ने रालेगण सिद्धी समेत अनेक गांवों को आत्मनिर्भर बनाया हैं। अपने देश में उद्यमियों की कमी नहीं है, बशर्ते, उन्हें अनुकूल माहौल मिले। डॉ. कुरियन वर्गीस ने तो दूध जैसे खराब हो जाने वाले रोजमर्रा के अनिवार्य अमूल्य पेय पदार्थ को अंतरराष्ट्रीय स्तर का अमूल दुग्ध ब्रांड बना दिया। देश में स्वदेशी उद्यमियों द्वारा उत्पादित हो रहे ऐसे ही अन्य अनेक ब्रांड भी इस कड़ी का हिस्सा हैं। कहने का आशय इतना भर है कि हम स्वदेशी उत्पादों को महत्व दें और बाजार में इन्हीं ब्रांडों को प्रोत्साहित करें। यदि हम ऐसा करते हैं तो हमें खाद्यान्नों को सुरक्षित रखने की दृष्टि से बुनियादी ढांचागत स्थिति विकसित करने के लिए अपेक्षित मात्रा में धन प्राप्त हो सकता है। ❑

समाचार परिक्रमा

आम आदमी की सुरक्षा पर खर्च 1 रुपए 42 पैसे

उत्तर प्रदेश के प्रमुख सचिव गृह सचिव अनिल कुमार गुप्ता ने वित्त आयोग के सामने गृह विभाग के प्रस्तुतीकरण में उ.प्र. में रोज हर आदमी पर 1.42 रुपए खर्च किए जाने का आंकड़ा पेश किया। दूसरी तरफ वीआईपी की सुरक्षा पर आम आदमी की तुलना में 2 हजार छह सौ ग्यारह गुणा से ज्यादा यानी पुलिस विभाग को तकरीबन 3709 रुपए खर्च करने पड़ते है। प्रदेश में 1173 लोगों पर एक पुलिस कर्मी है। राष्ट्रीय मानक के मुताबिक 568 लोगों पर एक पुलिस कर्मी होना चाहिए। जबकि देश के मौजूदा वक्त में 761 लोगों पर एक पुलिसकर्मी है। उत्तर प्रदेश की रिपोर्ट से साफ लगता है नेताओं को अपनी सुरक्षा की चिंता है जबकि आम आदमी की सुरक्षा की कोई चिंता नहीं। ❑

पांच में से दो कर्मी नौकरी बदलने की फिराक में

देश में हर पांच मेंसे दो कर्मचारी इस साल नौकरी बदलने की योजना बना रहे है। यह एक बात एक सर्वेक्षण में आई है। ये कर्मचारी ऊंचे वेतन की चाह और काम व जीवनशैली में बेहतर संतुलन के लिए नौकरी बदलना चाहते है। इसके साथ ये लोग बढ़ती महंगाई से भी परेशान होकर नौकरी चेंज करने की सोचते हैं। करियरबिल्डर डॉट द्वारा कराए गए सर्वेक्षण में 44 प्रतिशत पूर्णकालिक कर्मचारियों ने कहा कि वे 2014 में नौकरी बदलने की योजना बना रहे हैं। वहीं 11 फीसदी कर्मचारियों ने अभी यह तय नहीं किया है कि वे मौजूदा कंपनी में बने रहेंगे या नौकरी बदलेंगे। इस सर्वेक्षण में एक हजार कर्मचारियों को शामिल किया गया जो विभिन्न क्षेत्रों से थे।

सर्वेक्षण के अनुसार आर्थिक सुस्ती के दौर में बहुत कम लोगों ने नौकरी छोड़ी, क्योंकि उस दौरान बेहतर नौकरी ढूंढ पाना काफी मुश्किल था। अब रूख में बदलाव हो गया है। आधे कर्मचारी नौकरी बदलने की तैयार कर रहे है, ऐसे में नियोक्ताओं को अपनी शीर्ष प्रतिभाओं का रोकने के लिए रणनीति में समायोजन करना होगा।

वही ठेकेदारी चलन बढ़ने से लोगों का मनोबल गिर रहा है। कंपनियों में नियमित नौकरी वालों के मुकाबले ठेके पर नौकरी करने वालों की संख्या में तेज वृद्धि से कर्मचारियों का मनोबल प्रभावित हो रहा है। ❑

जोड़-घटा में भारत, गुणा भाग में पाकितान छात्र आगे

शिक्षा के मामले में पाकिस्तान को भारत के मुकाबले काफी पीछे माना जाता है। मगर शिक्षा के कुछ मामलों में भारत अपने पड़ोसी देश से पिछड़ गया है। साउथ एशियन फोरम फॉर एजुकेशन डेवलपमेंट इन पाकिस्तान और प्रथम एजुकेशन फाउंडेशन इन इंडिया की वार्षिक रिपोर्ट के मुताबिक जोड़ घटाने में जहां भारतीय बच्चे आगे हैं वहीं गुणा भाग में पाकिस्तान के बच्चे हमें पीछे छोड़ देते हैं। पाकिस्तान में जहां प्राथमिक शिक्षा लेने वाले बच्चों की संख्या कम है तो भारत में छात्रों और शिक्षकों की उपस्थिति के मामले में पाकिस्तान से पिछड़ता नजर आ रहा है। ❑

सरकारी स्कूलों की दुर्दशा

एक तरफ केन्द्र सरकार शिक्षा अभियान को तेजी से लागू कर रही है वही अगर हम दिल्ली के सरकारी स्कूलों की हालत देखें तो शायद रोना ही आ जाए। दिल्ली के सरकारी स्कूलों का यह हाल है तो देश के अन्य सरकारी स्कूलों का क्या हाल होगा। दिल्ली के 50 फीसदी स्कूलों में छात्रों के लिए शौचालय नहीं है। 28 प्रतिशत स्कूलों में नहीं है पीने के पानी की व्यवस्था। 456 स्कूलों में पानी की टंकी साफ नहीं की जाती है। 50 फीसदी स्कूलों में बिजली के तार खुले पड़े है और 35 प्रतिशत स्कूलों में छात्रों के लिए नहीं है ब्लैकबोर्ड। दिल्ली के शिक्षा मंत्री इस दुर्दशा के लिए पूर्व दिल्ली सरकार को दोष दे रहे हैं लेकिन इतना तय है कि अगर सरकारी स्कूलों का स्तर इसी तरह गिरता रहा तो वो दिन दूर नहीं जब देश में बेरोजगारी भी चरम सीमा पर पहुंच जाएगी।

अभिभावक वर्ग भी आज सरकार की शिक्षा व्यवस्था से चिंतित है। उनका भी मानना है कि शिक्षा का अधिकार कानून भले ही देश में लागू हो गया है लेकिन सरकारी स्कलों से अभिभावकों का मोहभंग हो रहा है। सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता में कोई सुधार नहीं हो रहा है। अब शहरों की तरह ग्रामीण क्षेत्रों के अभिभावकों का तेजी से निजी स्कूलों की तरफ झुकाव हो रहा है। उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड और राजस्थान जैसे राज्यों के ग्रामीण इलाकों में निजी स्कूलों में दाखिले बढ़ रहे है। जो एक चिंताजनक स्थिति है। आज जरूरत है कि केन्द्र सरकार और राज्य सरकार जल्द से जल्द सरकारी स्कूलों की व्यवस्था ठीक करनी चाहिए। ❑

विदेशी निवेशकों का भारत पर भरोसा

अर्न्स्ट एंड यंग इंडिया के एक सर्वेक्षण के अनुसार अब विदेशी निवेशकों ने भारत में विस्तार की योजना बनाई है। वे इस साल होने वाले आम चुनाव के बाद बेहतर कारोबारी और सुधार प्रक्रिया आगे बढ़ते रहने की उम्मीद भी कर रहे है। निवेशकों को उम्मीद है कि भारत वर्ष 2020 तक विश्व की तीन सबसे तेजी से वृद्धि दर्ज कर रही अर्थव्यवस्था में शामिल होगा। वर्ष 2014 में भारत वैश्विक स्तर पर सस्ती मजदूरी, घरेलू बाजार और शिक्षित कार्यबल की बदौलत विदेशी निवेश के लिए सुरक्षित और पसंदीदा क्षेत्र बने रहने की उम्मीद है। ❑

विनिर्माण क्षेत्र में आई तेजी

एक सर्वेक्षण के अनुसार इस बार जनवरी में भारत के विनिर्माण क्षेत्र में पिछले 10 महीने की सबसे तेज वृद्धि दर्ज की गई है। निर्यात और घरेलू मांग में वृद्धि का इसमें बड़ा योगदान बताया गया है। वित्तीय सेवा कंपनी एचएसबीसी के मासिक सर्वेक्षण में यह बताया गया। एचएसबीसी के भारत संबंधी मैन्युफैक्चरिंग मैनेजर्स इंडेक्स का आंकड़ा जनवरी में बढ़कर 51.4 अंक रहा। मार्च 2013 के बाद सबसे ऊंचा आंकड़ा है। दिसम्बर महीने में पीएमआई 50.7 था। सूचकांक के 50 अंक ऊपर होना आर्थिक गतिविधियों में विस्तार प्रदर्शित करता है। ❑

भारतीयों के लिए नहीं है हमारी कैंसर की दवा

धीरे–धीरे विदेशी कंपनियों का काला चेहरा साफ नजर आ रहा है। अब वैश्विक दिग्गज दवा कंपनी 'बायर' ने कहा है कि वह कैंसर की दवा 'नक्जावर' सिर्फ पश्चिमी देशों के लिए बनाती है जहां के मरीज इसे खरीदने में सक्षम है। कंपनी का कहना है कि इसे भारतीयों को ध्यान में रखकर नहीं बनाया जाता है क्योंकि वे इसे खरीद नहीं सकते है। गुर्दे कैंसर और लीवर के इलाज में इसका दवा का इस्तेमाल होता है। बयार कंपनी के इस बयान की मेडिसिन्स सैंस ने भी कड़ी निंदा की है। ❑

स्वदेशी ट्रेन टक्कररोधी प्रणाली का सफल परीक्षण

ट्रेनों में टक्कररोधी प्रणाली ट्रेन कॉलिजन अवार्डेन सिस्टम (टीसीएएस) के सफल परीक्षण के बाद इसको भारतीय रेलवे में इस्तेमाल किया जाएगा। भारतीय रेलवे के अनुसंधान अभिकल्प एवं मानक संगठन (आरडीएसओ) की ओर से बनाए गए टीसीएएस पूरी तरह से ब्लॉक सिस्टम पर सफल माना जा रहा है। यह बहुत ही सस्ती और प्रभावी है। लिहाजा इस प्रणाली के विकास पर दुनिया की निगाहें लगी हुई है। रेलवे बोर्ड के सदस्य विद्युत कुलभूषण के अनुसार यह सिस्टम टीपीडब्ल्यूएस एवं एसीडी को मिलाकर टीसीएएस को बनाया गया है। यह टीपीडब्ल्यूएस और एसीडी से सस्ती और टिकाऊ प्रणाली है। ❑

निवेश बढ़ाएगी दक्षिण कोरिया

उड़ीसा में पॉस्को की 52,000 करोड़ रुपए की इस्पात परियोजना को पर्यावरणीय मंजूरी से अन्य बड़ी कंपनियां भी अब भारत में निवेश बढ़ाने की सोच रही है। दक्षिण कोरिया के राष्ट्रपति ने कहा जब उड़ीसा में पॉस्को की परियोजना पूरी क्षमता से चालू हो जाएगी तो इससे दक्षिण कोरिया की अन्य बड़ी कंपनियां भी भारत में निवेश के लिए आएंगी। वही दूसरी तरफ महामहिम राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी ने कहा कि भारत चाहता है कि देश के बुनियादी ढांचे के विकास में कोरियाई निवेश और अधिक हो। ❑

रैनबेक्सी की कुछ दवाओं पर अमरीका में प्रतिबंध

भारतीय दवा क्षेत्र की प्रमुख कंपनी रैनबेक्सी की पंजाब स्थित टोंसा संयंत्र में बनी दवाओं को अमरीकी खाद्य एवं दवा नियामक (यूएसएफडीए) ने अमरीकी बाजार के लिए बनी दवाओं के वितरण पर पाबंदी लगा दी है।

अमरीकी नियामक ने रैनबेक्सी के टोंसा संयंत्र में एक्टिव फार्मास्युटिकल इनग्रिडिएंट्स (एपीआई) का इस्तेमाल कर विनिर्मित दवाओं के अमरीका में पाबंदी लगाई है। इसके साथ ही यह कंपनी का भारत में चौथा कारखाना है जिस पर अमरीकी दवा नियामक ने प्रतिबंध लगाया है।

अमरीकी अधिकारियों का कहना है कि हम अमरीकी उपभोक्ताओं तक घटिया दवाओं की पहुंच रोकने के लिए तेजी से यह कदम उठा रहे है। ❑

फोर्ब्स की सूची में आठ भारतीय उद्यमी कंपनी

भारतीय मूल के उद्यमियों द्वारा मिलकर स्थापित और उनकी अगुवाई में चल रही 8 कंपनियों को फोर्ब्स पत्रिका की ऐसी 100 सबसे होनहार प्राइवेट अमरीकी कंपनियों की सूची में स्थान मिला है जिनका सालाना कारोबार 25 करोड़ डॉलर से कम है। फोर्ब्स कि वार्षिक सूची में शामिल 100 कंपनियों में आठ कंपनियों के सह–संस्थापक भारतीय मूल के उद्यमी है। सूची में भारतीय फर्म वेडिंग वायर, प्रीपे नेशन, एच ब्लूम, जेन साइट, कोर्सहार्स, पब्लिक स्टाफ, मिक्सपो, परनिक्स डाटा शामिल है। ❑

पर्यावरण हितैषी देश में एक भी नेता नहीं

पर्यावरणविद शेखर पाठक के अनुसार देश में पर्यावरण मुद्दे पर ध्यान देने वाला एक भी नेता नहीं है। उन्होंने कहा आज सभी नेताओं ने प्राकृतिक संसाधनों को लूटने की नीति पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित कर रखा है। चुनाव से पहले सभी राजनीतिक दल एक ही भाषा बोलते रहे हैं जिससे यह छवि बनती है सभी कारपोरेट जगत के बारे में सोचते है जबकि पर्यावरण को अनदेखा कर देते है। ऐसे में वह पर्यावरण के बारे में कैसे सोच सकते हैं। जरूरत है आज विकास को नए सिरे से परिभाषित करने की जरूरत पर जोर देना चाहिए। ❑

पहली बार वोट डालेंगे चार करोड़ युवा

आज देश में कुल 81 करोड़ मतदाता है। वर्ष 2009 की तुलना करें तो मतदाताओं की संख्या में 10 करोड़ का इजाफ हुआ है। इस वर्ष होने वाले लोक सभा चुनाव में चार करोड़ युवा वर्ग पहली बार वोट डालेंगे जिनकी आयु 18 से 23 के बीच है। युवा वर्ग पर सभी पार्टियों की राजनीति का भविष्य टिका हुआ है। लोकतंत्र में हर मत बहुमूल्य होता है। ऐसे कुछ उदाहरण है जब मात्र एक वोट से एक पार्टी हार गई। 17 अप्रैल 1999 को वाजपेयी सरकार मात्र एक वोट से गिर गई थी। ❑

2035 तक कोई गरीब नहीं रहेगा : बिल गेट्स

आने वाले समय में दुनिया के गरीब देश हमेशा गरीबी की गर्त में पड़े नहीं रहेंगे यह कहना है दुनिया के सबसे अमीरों में से एक बिल गेट्स का।

साफ्टवेयर कंपनी माइक्रोसाफ्ट के संस्थापक गेट्स ने अपने फाउंडेशन के छठे सालना पत्र में लिखा है कि कुछ लोगों द्वारा यह भ्रम फैलाया गया है कि गरीब देश गरीब बने रहने को अभिशप्त है। लेकिन यह सच नहीं है। उन्होंने कहा कि वर्ष 2035 तक दुनिया में लगभग कोई देश गरीब नहीं होगा। साफ्टवेयर दिग्गज से समाजसेवी बने गेट्स के अनुसार दुनिया बेहतर हो रही है और दो दशकों में यह और बेहतर हो जाएगी। बिल गेट्स अब तक 28.3 अरब अमरीकी डॉलर अर्थात् 17.51 खरब रुपए दान दे चुके हैं। ❑

भारत और चीन से छिनेंगी नौकरियां : ओबामा

एक तरफ विदेश निवेशक भारत में अपना धन लगा रहे हैं तो दूसरी तरफ अमरीकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने कांग्रेस (संसद) के सालाना संयुक्त अधिवेशन में कहा कि भारत और चीन जा रही नौकरियों और कामकाज (आउटसोर्सिंग) को वापस लाने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि देश में निवेश करने वालों को दंडित करने और आउटसोर्सिंग कर लाभ कमाने वाली कंपनियों को फायदा पहुंचाने की नीति अब नहीं चलेगी। अब नौकरियां बाहर भेजने वाली कंपनियों को कोई कर छूट नहीं मिलेगी। उन्होंने रिपब्लिकनों के विरोध के बावजूद आव्रजन विधेयक को इसी साल पारित किया जाएगा। आव्रजन विधेयक में वीजा फीस बढ़ाने और एल 1 और एच 1बी वीजा की तादाद सीमित करने का भी प्रावधान है जिसका सीधा असर भारतीय आईटी कंपनियों पर पड़ना अब तय हो चुका है। भारतीय कंपनियां इस बिल के खिलाफ जबरदस्त लाबिंग में जुटी गई है। ❑

दूसरी छमाही में वृद्धि दर 4.5% रहेगी

देश की आर्थिक विकास दर में बढ़ोतरी को मुश्किल बताते हुए उद्योग संगठन सीआईआई ने चालू वित्त वर्ष की दूसरी छमाही में इसके 4.5 से पांच फीसद के बीच रहने की उम्मीद जताई है। सीआईआई द्वारा मुख्य कार्यकारी अधिकारियों (सीईओ) को शामिल कर कराए गए सव्रेक्षण में इस आशय का खुलासा हुआ है। रिपोर्ट में बताया गया है कि चालू वित्त वर्ष की पहली छमाही में विकास दर 4.6 फीसद रही थी। सर्वेक्षण के अनुसार अभी भी देश के आर्थिक विकास की वृद्धि में मुश्किलें बरकरार रहेंगी। ❑

दुनिया में सबसे दमघोंटू शहर - दिल्ली

दिलवालों की दिल्ली क्राइम राजधानी तो थी ही लेकिन अब दुनिया की नम्बर एक दमघोंटू शहर बन गई है। येल यूनिवर्सिटी के ग्लोबल इनवायरनमेंट इंडेक्स (ईपीआई) की 2014 की रिपोर्ट में दिल्ली में सांस लेना सबसे दूभर हो गया है। दमघोंटू देशों की सूची में भारत 32 स्थान फिसल गया है। रिपोर्ट के अनुसार दिल्ली की आबोहवा लोगों के लिए खतरनाक होती जा रही है।

हार्वर्ड इंटरनेशनल रिव्यू की रिपोर्ट के मुताबिक दिल्ली में पांच में से दो लोग सांस की बीमारी से पीड़ित है। लैंसेट ग्लोबल हेल्थ बर्डन ने भारत के प्रदूषण को मनुष्य की मौत का छठा कारण माना था। बीते साल विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत में वायु प्रदूषण को कैंसर का कारक करार दिया था। साथ ही पार्टिकुलेट मैटर के हवा में बढ़ने की वजह से लोगों के खून और फेफड़ों में पहुंच जाता है। वायु प्रदूषण की वजह से आंखों में जलन, अस्थमा, फेफड़े में सूजन, फेफड़ों का खराब होना, कैसर, हृदय संबंधी बीमारियां आदि होने का खतरा भी बढ़ रहा है।

कारण : दिल्ली में जहरीली हवा का कारण 81 लाख से अधिक पंजीकृत वाहन का भी है। इसके साथ फ्लाई ओवरों के पास लगने वाला जाम और जंगलों का काटना भी इसका कारण है। वर्ष 2000 में सीएनजी सेवा दिल्ली में शुरू हुई लेकिन वाहनों की बढ़ती संख्या ने सीएनजी से हुए फायदे को खत्म कर दिया। वही सड़क के ऊपर बनी मेट्रो लाइन से भी पीएम का स्तर और बढ़ चुका है। इसके अलावा उत्सर्जन मानकों का सही समय पर लागू नहीं होना भी वायु प्रदूषण को बढ़ाने का काम करता है।❑

विश्व के 85 अमीरों के पास दुनिया की आधी संपत्ति

आज दुनिया में अमीर और गरीब के बीच का फासला इस कदर बढ़ा है कि दुनिया की आधी आबादी के पास जितनी संपत्ति है उतनी संपत्ति दुनियाभर के केवल 85 धनी व्यक्तियों के पास है। आक्सफैम की 'वर्किंग फार द फ्यू' शीर्षक से प्रकाशित रिपोर्ट में यह बात कही गई है। इसमें विकसित एवं विकासशील दोनों तरह के देशों में बढ़ती असमानता का विस्तार से उल्लेख किया गया है। आक्सफैम का दावा है, 'धनाढयों ने आर्थिक खेल के नियम अपने हित में करने तथा लोकतंत्र को कमजोर करने के इरादे से राजनीतिक रास्ता भी अख्तियार किया है। दुनिया के सर्वाधिक 85 धनाढ्यों के पास इतनी संपत्ति है जो दुनिया की आधी आबादी की संपत्ति के बराबर है।'

रिपोर्ट के अनुसार 1970 के दशक में धनवानों के मामले में कर की दरें 30 देशों में से 29 में कम हुई हैं। ये वे देश हैं जिनके बारे में आंकड़ें उपलब्ध हैं। इसका मतलब है कि कई जगहों पर धनवान न केवल खूब धन अर्जित कर रहे हैं बल्कि उस पर कर भी कम दे रहे हैं। इसमें कहा गया है कि पिछले 25 साल में धन कुछ लोगों तक केंद्रित हुआ है और यह दुनिया के एक प्रतिशत परिवार के पास इतनी संपत्ति है जो दुनिया की करीब आधी आबादी (46 प्रतिशत) के बराबर है। आक्सफैम चाहती है कि सरकारें इस प्रवृत्ति को बदलने के लिए तत्काल कदम उठाएं। विश्व आर्थिक मंच में भाग लेने वाले लोगों से इस समस्या से निपटने के लिए व्यक्गित संकल्प लेने को भी कहा गया है। ❑

पेप्सी और कोका कोला की हर घूट से है मौत का खतरा

अगर आप पेप्सी पीने के शौकीन है या अपनी पार्टी और घरों में पेप्सी और कोका कोला अपने मित्रों को पिला रहे है तो सावधान हो जाए। इससे आपको और आपके मित्रों को कैंसर हो सकता है या कुछ देर बात मौत भी हो सकती है। यह हम नहीं कह रहे हैं इस बात की पुष्टि भी हो चुकी है।

एक वर्ष पूर्व पर्यावरण संबंधी समूह सेंटर फॉर इन्वायरनमेंटल हेल्थ की जांच में यह तथ्य सामने आया था कि पेप्सी के प्रॉडक्ट्स में बड़ी मात्रा में कैंसर पैदा करने वाले तत्व पाए गए थे।

बाबा रामदेव कोक, पेप्सी को स्वास्थ्य के लिए सबसे बड़ा खतरा बताते हैं। वे सॉफ्ट ड्रिंक को 'टॉयलेट क्लीनर' मानते है।

अभी हाल ही में 9 फरवरी को तमिलनाडु के कुडालोर जिले में आठ साल की बच्ची की सॉफ्ट ड्रिंक पीने से मौत हो गई साथ ही उसके तीन भाई बहन भी बीमार हो गए। राज्य सरकार ने जांच के आदेश तो दे दिए।

लेकिन अब आप सावधान हो जाए! इस पीये पदार्थ को आज से ही त्याग दें। क्रिकेट खिलाड़ी और फिल्मी कलाकरों के पीये पदार्थों के विज्ञापन के धोखे में अब आप न आए।

समुद्र में घुलता जहर - भविष्य के लिए बड़ा संकट

भारतीय समुद्र तट 6100 किलोमीटर लम्बा है और यह समूचा क्षेत्र प्रदूषण की गिरफ्त में है। समुद्र मे जिस गति से प्रदूषण का जहर मिल रहा है उसके पीछे के जिम्मेदार कारकों में मुख्यरूप से आबादी का फैलाव, समुद्र में आणविक अस्त्रों का परीक्षण, औद्योगिकरण, जहाजरानी तथा भारी पैमाने पर कीटनाशक रसायनों का उपयोग है। तटवर्ती इलाकों पर अवस्थित नगरों की भीषण गंदगी तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकलने वाले विषैले अवशेष मुस्तकिल रूप से समुद्र में मिलकर जहर घोल रहे हैं।

■ उमेश प्रसाद सिंह

मनुष्य के कठिन समय का साथी समुद्र भी अपने भीतर असीमित जहर निगलता हुआ अपना मूल स्वरूप खोने की ओर अग्रसर है। नदी, नाले, ताल–तलैयों की तरह सागर के पानी में प्रतिदिन घुल रहा जहर मनुष्य के अस्तित्व को भी चुनौती दे रहा है।

धरती पर जनसंख्या का बढ़ता दबाव से उपज रहे खाद्य एवं जल संकट से बचाव के लिए हम समुद्र की ओर आशा भरी निगाह लगाए हैं लेकिन प्रदूषण इसी गति से बढ़ता रहा तो हमारी आकांक्षाएं पूरी नहीं हो सकती।

आज विश्व के अन्य महासागरों की बात छोड़ दें तो भी हमारे यहां के सागरों की हालत और बदतर है। भारतीय समुद्र तटों पर प्रतिदिन 8.4 मिलियन गैलन गंदगी तथा लगभग तीन लाख टन डिटरजेंट पानी में डाले जाते हैं। कीटनाशक रसायनों का व्यापक उपयोग तथा कारखानों से निकलने वाले विषैले अवशेष समुद्र में ही पहुंचते हैं। इससे मछलियां और समुद्री वनस्पतियों को उपयोग में लाने वाले लोग बीमारियों की चपेट में आ रहे है।

भारतीय समुद्र तट 6100 किलोमीटर लम्बा है और यह समूचा क्षेत्र प्रदूषण की गिरफ्त में है। समुद्र मे जिस गति से प्रदूषण का जहर मिल रहा है उसके पीछे के जिम्मेदार कारकों में मुख्यरूप से आबादी का फैलाव, समुद्र में आणविक अस्त्रों का परीक्षण, औद्योगिकरण, जहाजरानी तथा भारी पैमाने पर कीटनाशक रसायनों का उपयोग है। तटवर्ती इलाकों पर अवस्थित नगरों की भीषण गंदगी तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकलने वाले विषैले अवशेष मुस्तकिल रूप से समुद्र में मिलकर जहर घोल रहे हैं।

हाल में किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि समुद्र में खाद्य उत्पादों में 50 से 60 प्रतिशत तक की कमी आई है। समुद्र में प्रायः आणविक परीक्षण होते रहते है जिससे समुद्र में रेडियोधर्मिता प्रसारित होती है। इससे लाखों समुद्री जीव जंतु बेमौत मर जाते हैं। समुद्र की सतह पर तेल परिवहन तथा टैकरों के फटने से जमें हुए तेल ने तो अत्यंत जटिल समस्या खड़ी कर दी है।

यह प्रदूषण वाष्पीकरण प्रक्रिया को रोककर वर्षा को प्रभावित कर मौसम विज्ञान के मूलाधारों पर ही असर डाल रहा है। वैसे भी दुनिया में साफ पानी की किल्लतें हैं।

विडम्बना तो यह है कि हमारे पास .03 प्रतिशत पानी का जो छोटा हिस्सा है उसमें से भी अधिकांश में प्रदूषण का जहर घुल गया है। भारत के समुद्री तटीय क्षेत्रों में 15 करोड़ से अधिक लोग निवास करते हैं। तटवर्ती नगरों का जलमल तथा औद्योगिक प्रतिष्ठानों से निकले विषैलेकारक समुद्र को विषैला बना रहे हैं।

विगत 40–45 वर्षों में बढ़ते परिवहन व्यय को बचाने के लालच में तटवर्ती भाग में औद्योगिक प्रतिष्ठान बढ़े हैं जो प्रदूषण

फैलाने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। तटवर्ती आबादी ही प्रतिदिन 30 घन कि. ली. घरेलू गंदा पानी, तीन लाख कि.ली. औद्योगिक कचरा तथा 12 करोड़ टन से ज्यादा कूड़ा–करकट समुद्र में विसर्जित करता है। इससे प्रदूषण लगातार बढ़ता जा रहा है।

वैसे हिन्द महासागर दुनिया के नक्शे पर साफ सुथरे महासागरों की कोटि में आता है लेकिन पिछले 20 वर्षों में यहां व्यापक स्तर पर प्रदूषण फैला है। अगर यहां प्रदूषण वेग पर लगाम नहीं लगाई गई तो फिर जल्दी ही यह दुनिया के प्रदूषित महासागरों की श्रेणी में आ जाएगा। वर्षाऋतु के कीटनाशक रसायनों तथा खरपतवारों के नाशक दवाएं और डीडीटी आदि का जहर नदी के रास्ते समुद्र में समाहित हो जाता है। कीटनाशक दवाइयों का सबसे बुरा असर समुद्री मछलियों पर पड़ता है। इससे उनकी संख्या कमी होती जा रही है। मनुष्यों के लिए डीडीटी कैंसर ट्यूमर उपजाने में सहायक होता है। ऐसे दुष्परिणामों को प्रकाश में आने के पश्चात पश्चिम के सम्पन्न राष्ट्र अपने यहां इसके उपयोग पर पूर्णतः प्रतिबंध लगा दिया है। लेकिन अभी भी भारत समेत एशिया के विकासशील देश डीडीटी का उपयोग बड़े पैमाने पर कर रहे है।

भाभा परमाणु अनुसंधान केन्द्र द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि समुद्र में गिरने वाले दूषित जल के कारण किनारे के पानी में सर्वाधिक विषैले कारक पारे का संकेन्द्रण हो रहा है जिसका असर समुद्री जीवों पर भी पड़ रहा है। हिन्द महासागर से होकर तेल के बड़े–बड़े जहाजों का आना जाना लगा रहता है। अनेक बार जहाज पर लदे हुए टैंकरों के फटने से तेल समुद्र के ऊपरी परत पर छा जाता है। इससे मछलियां मर जाती है। कुल मिलाकर स्थिति बड़ी ही गंभीर बनती जा रही है। शीघ्र ही प्रदूषण नियंत्रण पर कारगर उपाय नहीं किया गया तो हालत बद से बदतर हो जाएगी। ❑

:: सदस्यता संबंधी सूचना ::

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है :–

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	150 रुपए	1500/– रुपए
अंग्रेजी	150 रुपए	1500/– रुपए

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

आप सीधे बैंक ऑफ इंडिया, खाता नं. 602510110002740 IFSC : BKID 0006025 (Ramakrishnapuram) में जमा करवा सकते हैं और उसकी रसीद और अपना पता आप कार्यालय में अवश्य भेजे।

स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22

पार्टियों में सबसे बड़ा भ्रष्टाचार?

सरकार के मंत्री और नौकरशाह भी भ्रष्टाचार करते हैं, पार्टी की खातिर ही! पार्टी को चलाने के लिए करोड़ों–अरबों की जरूरत होती है और चुनाव लड़ने के लिए अरबों–खरबों की। यह जरूरत कौन पूरी करता है? यह पैसा कहां से आता है, कैसे आता है? यह सरकार से आता है। चोर–दरवाजों से आता है। जब मंत्रिगण रंगे हाथों पकड़े जाते हैं फिर उन्हें हटाने की हवा बहने लगती है तो वे पार्टी–अध्यक्ष से जाकर अपनी 'पार्टी–सेवा' की दुहाई देने लगते हैं।

■ **डॉ. वेदप्रताप वैदिक**

सूचना के अधिकार का मतलब है– सरकार के सच को जानने का अधिकार! यह अधिकार 2005 के पहले तक सांसदों, विधायकों और पार्षदों तक सीमित था। वे सदन में खड़े होकर प्रश्नोत्तर काल में तो वह नहीं मिल सकती थी यानी सरकार केवल सांसदों और विधायकों के प्रति ही जवाबदेह थी। जनता के प्रति नहीं।

सरकार को आड़े हाथों ले सकते थे, लेकिन जनता बिलकुल निहत्थी थी। यदि किसी आम आदमी को सरकार के किसी विभाग से कोई जानकारी चाहिए होती थी उस जनता के प्रति नहीं, जो इन सांसदों और विधायकों को चुनकर भेजती है। अर्थात सरकार उसके असली मालिक को जवाब देने के लिए बाध्य नहीं थी, लेकिन 2005 के सूचना का अधिकार कानून में यही नई बाध्यता कायम कर दी गई है कि उसे जनता को जवाब देना होगा।

भ्रष्टाचार तो अब भी जारी है, पक्षपातपूर्ण और गलत फैसले अब भी होते हैं, लेकिन अब उनको ढंकने का विशेष इंतजाम होता है। सबसे पहले तो इस कानून के अंदर ही छोड़ी गई गलियों में से रास्ते निकाल लिए जाते हैं। कभी गोपनीयता का, कभी राष्ट्रीय सुरक्षा का और कभी निजता का बहाना बना लिया जाता है और सूचनाओं पर कंबल ढांक दिया जाता है। इसके अलावा अभी भारत की जनता भी इतनी जागरूक नहीं हुई है कि वह बारीकियों में उतरकर सरकार को उसकी करतूतों का आईना दिखा सके।

सूचना के अधिकार के अंतर्गत अब कोई भी नागरिक सरकारी काम–काज के बारे में जानकारी मांग सकता है। वह एक अर्जी लिखे, 10 रुपए शुल्क भरे और 30 दिन के अंदर जवाब पाए। इस अधिकार का कुछ लोग दुरुपयोग भी करते हैं, लेकिन इसने शासन–तंत्र के कान खड़े कर दिए हैं। अब मंत्री और नौकरशाह किसी मामले पर जब भी कोई फैसला करते हैं तो वे अतिरिक्त सावधानी बरतते हैं। उन्हें डर लगा रहता है कि सूचना के अधिकार के तहत अगर उनकी कारगुजारियां, सारी बातें जनता के सामने आ गईं तो क्या होगा?

भ्रष्टाचार तो अब भी जारी है, पक्षपातपूर्ण और गलत फैसले अब भी होते हैं, लेकिन अब उनको ढंकने का विशेष इंतजाम होता है। सबसे पहले तो इस कानून के अंदर ही छोड़ी गई गलियों में से रास्ते निकाल लिए जाते हैं। कभी गोपनीयता का, कभी राष्ट्रीय सुरक्षा का और कभी निजता का बहाना बना लिया जाता है और सूचनाओं पर कंबल ढांक दिया जाता है। इसके अलावा अभी भारत की जनता भी इतनी जागरूक नहीं हुई है कि वह बारीकियों में उतरकर

सरकार को उसकी करतूतों का आईना दिखा सके। इसके बावजूद सत्तारूढ़ दल और सरकार के नेता सूचना के अधिकार को भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी उपलब्धि बताते हुए नहीं अघाते।

यदि सचमुच लोकतंत्र का अर्थ जनता के लिए, जनता द्वारा जनता की सरकार है तो फिर जनता को यह अधिकार क्यों नहीं मिलता कि वह सिर्फ सरकार ही नहीं, राजनीतिक दलों की भी निगरानी करे। सरकारें तो अपने दलों की सेविकाएं होती हैं। सरकार में बैठे नेतागण अपने पार्टी–नेताओं के इशारों पर नाचते हैं।

सरकारों के असली मालिक तो उनके राजनीतिक दल होते हैं। क्या हमारे देश के प्रधानमंत्रियों और मुख्यमंत्रियों का चुनाव आम मतदाता करते हैं। वे तो चुने जाते हैं, नामजद किए जाते हैं, उनकी पार्टियों के द्वारा, उनकी पार्टी के अध्यक्षों के द्वारा! इसीलिए वे जो भी अच्छा या बुरा काम करते हैं, वह जाता है, पार्टी के खाते में! पार्टी ही चुनाव हारती और जीतती है।

सरकार के मंत्री और नौकरशाह भी भ्रष्टाचार करते हैं, पार्टी की खातिर ही! पार्टी को चलाने के लिए करोड़ों–अरबों की जरूरत होती है और चुनाव लडने के लिए अरबों–खरबों की। यह जरूरत कौन पूरी करता है? यह पैसा कहां से आता है, कैसे आता है? यह सरकार से आता है। चोर–दरवाजों से आता है। जब मंत्रिगण रंगे हाथों पकड़े जाते हैं तो वे पार्टी–कोष का छाता तान लेते हैं। जब उन्हें हटाने की हवा बहने लगती है तो वे पार्टी–अध्यक्ष से जाकर अपनी 'पार्टी–सेवा' की दुहाई देने लगते हैं।

वे भ्रष्टाचार करते हैं, खुद के लिए भी, लेकिन उसकी सफाई देते वक्त वे पार्टी–कार्यकर्ताओं की मांग पूरी करने का दम भरते हैं। पार्टी के लिए कोष इकट्ठा करने के नाम पर बेहिसाब रिश्वतें ली जाती हैं। **रिश्वत देने वालों को अंधाधुंध फायदे दिए जाते हैं। रिश्वत देने वाले लोग रिश्वत लेने वाले मंत्रियों से कहीं अधिक घाघ होते हैं। वे एक देते हैं तो बदले में दस ले लेते हैं। इसीलिए सरकार में बेलगाम भ्रष्टाचार होता रहता है। सरकारी भ्रष्टाचार की जड़ पार्टी–भ्रष्टाचार में पलती है। पार्टी–भ्रष्टाचार सरकारी भ्रष्टाचार की अम्मा है।**

पार्टी–भ्रष्टाचार इसलिए दबा रहता है कि उसका कोई सही हिसाब–किताब नहीं रखा जाता। पैसे आने पर किसी को रसीद नहीं दी जाती और पैसा बांटने पर किसी से कोई पावती लिखाई नहीं जाती। सब काम जबानी होता है। जो काम लिखित में होता है, वह हाथी के दिखाने के दांत होते हैं।

आयकर विभाग को कोई पार्टी दो हजार करोड़, कोई एक हजार करोड़ और कोई दो–तीन सौ करोड़ रु. की आमदनी दिखा देती है। ये दिखाने के दांत हैं और जो खाने के असली दांत हैं, जरा उनके बारे में सोचिए। वे कितने लाखों–करोड़ के होंगे? लाखों–करोड़ों नहीं, अरबों–खरबों के!

अरबों–खरबों का यह भ्रष्टाचार क्यों ढंका–दबा रह जाता है? क्योंकि हमारे ज्यादातर राजनीतिक दल प्राइवेट लिमिटेड कंपनियां बन गए हैं। हमारी पार्टियों का असली रूप क्या है? कोई मां–बेटा पार्टी है, कोई बाप–बेटा पार्टी है, कोई पति–पत्नी पार्टी है, कोई साला–जीजा पार्टी है, कोई बाप–बेटी पार्टी है। ये पार्टी–मालिक अपने–अपने भ्रष्टाचारों पर कुंडली मारे बैठे रहते हैं। ये टिकिट बांटने में पैसे बटोरते हैं। पैसे का यह लालच पार्टियों के आंतरिक लोकतंत्र को भी चकनाचूर कर देता है। न तो पार्टी पदाधिकारियों का चुनाव विधिवत होता है न उम्मीदवारों का। वे ही उम्मीदवार प्राथमिकता पाते हैं, जो मंत्री बनने पर पैसों के पेड़ बन सकें ये उम्मीदवार चुनाव आयोग द्वारा निर्धारित खर्चे की सीमा का सरासर उल्लंघन करते हैं। उस सीमा से 100–100 गुना ज्यादा खर्च करते हैं और फिर सरकार में आने पर उसी खर्च को वे ब्याज समेत वसूलते हैं। सरकारी भ्रष्टाचार की जड़ यही है।

देखा जाए तो आज सूचना का अधिकार राजनीतिक पार्टियों पर सबसे पहले लागू होना चाहिए था। राजनीतिक पार्टियां सरकारों के मुकाबले कहीं अधिक सार्वजनिक होती हैं। सरकारी सच जानने से भी ज्यादा जरूरी है, देश का राजनीतिक सच जानना। यदि राजनीति शुद्ध हो जाए, यदि पार्टियों में आर्थिक शुचिता आ जाए तो सरकार को शुद्ध रखना ज्यादा सरल होगा, लेकिन असली प्रश्न यह है कि क्या हमारे नेतागण शुद्ध सरकार चाहते हैं?

यदि चाहते होते तो राजनीतिक दलों को सूचना के अधिकार के बाहर रखने पर ये सारे मौसेरे भाई एक क्यों हो गए? कोई दल तो बोलता कि हम अपना सब सच सार्वजनिक करने को तैयार हैं? सारी पार्टियां अपना पेट छिपाए क्यों बैठी हैं? पार्टी–सच, सरकारी–सच से कहीं अधिक गंभीर होता है। ❑

चकबंदी की सफलता से रुकेगा पलायन

उत्तराखंण्ड में चकबंदी आंदोलन सफल हो गया तो फिर फल पट्टियां से उत्पादन से संबंधित उद्योगों को बढ़ावा देने के साथ ही कोल्डस्टोरों व लघु उद्योगों का जाल बिछने तथा स्थानीय उत्पादों की विपणन व्यवस्था के लिए प्रयास जारी रहेंगे। जब सिक्किम सरकार वहां से आर्गेनिक सब्जियां को जापान, मलेशिया, हॉगकाँग तक पहुचा सकती है तो हमारे पास तो उनसे भी अधिक सुविधाजनक परिस्थितियां हैं। चकबन्दी हो जाने के कारण अब हमारे पड़ोसी राज्य हिमाचल से पलायन नहीं होता है।

■ **जयवीर सिंह रावत**

आज उत्तराखण्ड से लोगों का पलायन रूक नहीं रहा है। पलायन क्यों हो रहा है इसके लिए कोई भी राजनीतिक दल ठीक ढंग से न तो जवाब दे पाया है और न ही राज्य में रोजगार उत्पन्न कर पाया है। बस केवल पलायन पर चर्चा

करके इस विषय को खत्म ही कर देते हैं। देखा जाए पलायन जब भी होता है तो सबसे ज्यादा दुख संयुक्त परिवारों को ही होता है फिर उस राज्य को भी कहीं न कहीं नुकसान होता है। श्री गणेश सिंह गरीब द्वारा उत्तराखण्ड में चकबन्दी अभियान चलाया जा रहा है। गणेश सिंह गरीब चकबन्दी अभियान 1981 से चला रहे हैं। उनके इस आन्दोलन को समर्थन देने वाले कई हस्तियाँ और कई समाज सेवक व लेखक भी शामिल हैं।

आज चकबन्दी आन्दोलन एक जनआन्दोलन का रूप ले रहा है। अब कोई भी ताकत इसे रोक नहीं सकती है। आन्दोलनकारी संगठन, उत्तराखण्ड जनता संघर्ष मोर्चा, उत्तराखण्ड लोक मंच, गढ़वाल सभा हितेषणी सभा अनेकों संगठनों का समर्थन मिल रहा है।

आंदोलन के अध्यक्ष श्री जगदीश नेगी (उत्तराखण्ड जन कल्याण परिषद्) के अनुसार आज चकबन्दी की मांग क्यों उठ रही हैं इस पर जरा ध्यान दें :– उत्तराखण्ड गठन के 13 वर्षों के बाद भी पर्वतीय क्षेत्रों से पलायन नहीं रूका रहा है? कृषि भूमि बंजर होती जा रही है? गांव के गांव खाली होते जा रहे हैं व मकान उजड़ते जा रहे हैं? गांवों में जंगली जानवरों, बन्दरों, लंगूरों व बाघों ने आतंक मचा रखा है? ग्राम सभाओं की संख्या घटती जा रही है? विधायकों की संख्या घटती जा रही है? पर्वतीय गांवों के निवासियों में स्वावलम्बन खत्म होता जा रहा है? उद्यमी वर्ग उद्योग लगाने के लिए मैदान से पहाड़ पर चढ़ने को तैयार नहीं है? सरकार द्वारा दी जा रही सब्सिडी से लगे उद्योगों से भी स्थानीय युवाओं को रोजगार प्राप्त नहीं हो पा रहा है।

अगर उपरोक्त समस्याओं पर गौर करें तो इसमें सरकार की शिथिलता, जन प्रतिनिधियों की बेरूखी व अधिकारियों की विवेकहीनता व विजन की कमी साफ झलकती है। उत्तराखण्ड राज्य के गठन के साथ एक विजन डाक्यूमेंट जनता से विचार विमर्श कर बनाया जाना चाहिए था जो कि नहीं बनाया गया। राज्य के गठन के बाद अधिकारियों व नेताओं ने वहां निवास कर रही जनता की आवश्यकताओं व प्राथमिकताओं को पूछना आवश्यक नहीं समझा। जबकि राज्य गठन के बाद पहली प्राथमिकता वहां के पलायन को रोकना, रोजगार के अवसर तलाशना व आर्थिक विकास की योजनाओं पर ध्यान देना जरूरी था। आज पर्वतीय क्षेत्रों में बिना भूमि बन्दोबस्त अर्थात् चकबन्दी के यह संभव नहीं था।

अभी हाल ही में सरकार द्वारा अनिवार्य चकबंदी लागू करने का ऐलान किया गया है परंतु यदि स्थानीय जनता जागरूक नहीं हुयी तो पूर्व की तरह यह योजना भी ठण्डे बस्ते में चली जाएगी। क्योंकि :–

- वर्ष 1939 में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री गोविन्द वल्लभ पंत ने अनिवार्य चकबन्दी एक्ट बनाया।
- 1952 में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा भूमि सुधार एवं जमींदारी उन्मूलन बिल पारित किया लेकिन पर्वतीय क्षेत्रों को इससे विरत रखा।
- 1989 में लगातार चकबंदी मांग के बाद तत्कालीन मुख्यमंत्री नारायण दत्त तिवारी के काल में उत्तर प्रदेश सरकार ने पर्वतीय अंचल में चकबंदी करने का निर्णय लिया।
- 1990 में गढ़वाल मंडल के पौड़ी जनपद व कुमायूं मंडल के अल्मोड़ा जनपद में अलग–अलग चकबन्दी कार्यालय खुले।
- 1996 में प्रारूप न होने के काम न करने के कारण यह कार्यालय बन्द कर दिए गए।
- 1997 में तत्कालीन उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पर्वतीय विकास विभाग के प्रमुख सचिव डॉ. आर. एस टोलिया को चकबन्दी प्रारूप बनाने का दायित्व सौंपा गया था किन्तु कुछ नहीं हुआ।
- 2001 में नये राज्य गठन की सरकार द्वारा विधानसभा में चकबन्दी के समर्थन में प्रस्ताव पारित किया।
- 2002 में मुख्यमंत्री एन.डी. तिवारी ने भी चकबन्दी करने का वचन दोहराया।
- 2003 में राजस्व मंत्री डॉ. हरक रावत द्वारा चकबन्दी परामर्श समिति का गठन किया गया।
- 2004 में श्री पूरणसिंह डंगवाल की अध्यक्षता में भूमि सुधार परिषद का गठन व चकबन्दी प्रारूप बनाने का दायित्व दिया गया था।
- 2007 में स्वैच्छिक चकबन्दी लागू कराने हेतु कृषि मंत्री त्रिवेन्द सिंह रावत की अध्यक्षता में चकबन्दी परामर्श समिति और उनको भी प्रारूप बनाने का दायित्व दिया।

यदि चकबन्दी व भूमि बन्दोबस्त आजादी के साथ ही हो गया होता तो आज उत्तराखण्ड राज्य देश का सबसे अधिक आर्थिक सम्पन्न राज्य होता। परंतु सरकारें केवल दिखावे के लिए चकबन्दी की बात करती है व फिर जब कहीं पर भी जरा सा विरोध होता है तो मामले को ठण्डे बस्ते में डाल देती हैं।

चकबन्दी हो जाए और प्रत्येक कृषक के बिखरे हुए खेत एक या दो (सिंचित व असिंचित) चक्रों में उपलब्ध हो जाए, तो पराम्परागत खेती के अलावा वह उसमें व्यवसायिक खेती जैसे मौसमी सब्जी, कैश क्राप (आलू, प्याज, लहसून, अदरक, मिर्च, टमाटर), फलोद्यान व जड़ी–बूटी आदि लगा सकता हैं। साथ ही मधुमक्खी पालन, कुकुट पालन, लघु व कुटीर उद्योग भी लगा सकता हैं। क्योंकि भूमि एक ही जगह उपलब्ध हो जाने से वह इसे आसानी से उपयोग कर पायेगा।

जगदीश नेगी ने कहा अगर यह आंदोलन सफल हो गया तो फिर फल पट्टियां से उत्पादन से संबंधित उद्योगों को बढ़ावा देने के साथ ही कोल्डस्टोरों व लघु उद्योगों का जाल बिछने तथा स्थानीय उत्पादों की विपणन व्यवस्था के लिए प्रयास जारी रहेंगे। जब सिक्किम सरकार वहां से आर्गेनिक सब्जियां को जापान, मलेशिया, हॉगकॉंग तक पहुचा सकती है तो हमारे पास तो उनसे भी अधिक सुविधाजनक परिस्थितियां हैं। चकबन्दी हो जाने के कारण अब हमारे पड़ोसी राज्य हिमाचल से पलायन नहीं होता है।

चकबंदी से फायदा

- राज्य के लाखों परिवारों को ग्रामीण क्षेत्र में ही पूर्ण रूप से स्वरोजगार की राह निकल सकती हैं
- हर परिवार अपने चक्र में अपनी सोच, सुविधा, योग्यता, सामर्थ्य और आवश्यकता के अनुसार योजना बना सकता है।
- वैज्ञारिक तरीकों से लाभकारी खेती, बागवानी, पशुपालन, वानिकी आदि कार्य हो सकता है।
- अनुसूचित जाति, जनजाति के भूमिहीनों को भी भू–स्वामित्व का अधिकार मिल सकता है।
- काश्तकार, शिल्पकार व दस्ताकार अपने पुश्तैनी कार्य में जुट सकते हैं।
- महिलाओं के ऊपर से काम का बोझ कम हो सकता है व उनकी आय में वृद्धि हो सकती है।
- ग्रामीण युवाओं को सही दिशा मिल सकती है और बच्चों के घर से न भागने से बाल मजदूरी कम हो सकती है।
- भाई–बंटवारे, क्रय–विक्रय संजायती खाते संबंधी भूमि विवाद समाप्त हो सकते हैं।
- हमारे कृषि उत्पादों की पहचान बन सकती है। जड़ी–बूटी, पुष्पोदन, सुगंध पादप उत्पादन की राह निकल सकती है।
- कृषि उत्पादन में लगभग दस से पन्द्रह गुणा वृद्धि की संभावना हो सकती है जिससे किसान की क्रय शक्ति बढ़ सकती है।

यदि यह सब सफल हुआ तो उत्तराखण्ड के पर्वतीय जिलों से पलायन तो रूकेगा ही साथ ही जो पहले पलायन कर चुके हैं वे भी वापसी करेंगे और यह देश का सर्वोत्तम राज्य होगा। तभी इस राज्य के गठन के लिए संघर्ष करते हुए जनों की आत्मा को शांति मिलेगी व सभी को उत्तराखण्ड राज्य गठन का औचित्य समझ में आएगा। ❑

चिकित्सा पर्यटन का नया केन्द्र

मानव अंगों की तस्करी इस उद्योग का एक और स्याह पक्ष है। विकसित देशों में मानव अंग आसानी से उपलब्ध नहीं हैं, जबकि भारत जैसे गरीब देशों में पैसों के लालच अथवा ताकत के प्रभाव का प्रयोग कर गरीबों के उत्पीड़न की आशंका बराबर बनी रहती है। इतना ही नहीं, चिकित्सा पर्यटकों की बेहतर क्रय क्षमता सरकारी अस्पतालों से बेहतर डॉक्टरों को दूर कर देगी, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को बेहतर चिकित्सकीय सुविधाएं नहीं मिल पाएंगी।

■ मुकुल श्रीवास्तव

अपने देश में चिकित्सा पर्यटन यानी सस्ती एवं बेहतर चिकित्सीय सुविधाओं एवं सेवाओं के लिए देश के ही भीतर अथवा दूसरे देशों में की जाने वाली यात्रा, पिछले कुछ वर्षों में एक प्रमुख पर्यटन उत्पाद के रूप में उभरी है। इसकी वजह यहां की भौगोलिक विविधता और समृद्ध ऐतिहासिक विरासत और सस्ती स्वास्थ्य सेवाएं हैं, जिस कारण यहां आने वाला मरीज इलाज कराने के साथ–साथ आस–पास के इलाकों में घूमकर स्वास्थ्य लाभ भी करता है। हालांकि भारत को सिंगापुर, मलेशिया, थाइलैंड जैसे देशों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है, पर यहां इस पर्यटन के विकास की संभावनाएं तुलनात्मक रूप से अधिक हैं।

भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय की वर्ष 2012–13 में प्रकाशित वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार, नवोन्नत चिकित्सा सुविधाएं, बेहतर डाक्टर एवं स्वास्थ्यकर्मी, उत्कृष्ट नर्सिंग सेवाएं अपेक्षाकृत कम प्रतीक्षा समय एवं आयुर्वेद व योग जैसी पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियां, जो एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति के साथ मिलकर समग्र निरोगिता प्राप्त करने में सहायक होती हैं, कुछ ऐसे कारण हैं, जो भारत को एक पसंदीदा चिकित्सा पर्यटन गंतव्य बनाते हैं।

गिरते रुपये ने भले ही भारतीय अर्थशास्त्रियों को परेशान कर रखा है, परंतु चिकित्सा पर्यटन के लिए यह शुभ संकेत बनकर उभरा है, क्योंकि रुपये की गिरती कीमत ने देश में पहले से ही सस्ती चिकित्सा सुविधाओं को विदेशियों के लिए और भी सस्ता बना दिया है। अभी देश में चिकित्सा पर्यटन उद्योग लगभग 7,500 करोड़ रुपये का है, जिसके 2015 तक बढ़कर 12,000 करोड़ रुपये हो जाने की उम्मीद है। भारत में चिकित्सीय सेवाओं के सस्ते होने का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि दिल की बाईपास सर्जरी के लिए अमेरिका में लगभग 1,50,000 डॉलर खर्च करने पड़ते हैं, वहीं भारत में इसका खर्च सिर्फ 5,000 से 6,000 डॉलर आता है। इसी तरह कूल्हे बदलने के लिए अमेरिका में 50,000 डॉलर तक खर्च ने पड़ते हैं, जबकि अपने देश में सिर्फ 7,000 डॉलर। इसी तरह दांतों के रोपण, एंजियोप्लास्टी, लेसिक जैसी चिकित्सीय सुविधाएं अन्य देशों के मुकाबले यहां सस्ती हैं।

चिकित्सा पर्यटन के माध्यम से भारत सरकार बहुमूल्य विदेशी मुद्रा अर्जित कर अपना व्यापार घाटा नियंत्रित कर सकती है। इससे नए रोजगार का सृजन भी किया जा सकता है। केंद्र सरकार के पर्यटन मंत्रालय ने चिकित्सीय सेवाओं के लिए यहां आने वाले पर्यटकों के लिए विशेष 'चिकित्सा वीजा' की व्यवस्था की है। यहां आने वाले चिकित्सा पर्यटकों में विकसित देशों जैसे ब्रिटेन, अमेरिका, आदि से लेकर पड़ोसी मुल्कों जैसे पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका आदि देशों के पर्यटक भी शामिल हैं।

भले ही अपने देश में चिकित्सा पर्यटकों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, परंतु इसका स्याह पक्ष भी है। आधारभूत सुविधाओं के अभाव में यहां चिकित्सा पर्यटन का विकास उतनी तेजी से नहीं हो पा रहा है, जितना होना चाहिए। नीतिगत प्रश्न भी इसके विकास में बाधा डाल रहे हैं। इसके अतिरिक्त, देश में बढ़ती जनसंख्या तक आज भी मूलभूत चिकित्सा सुविधाएं नहीं पहुंच पा रही हैं। चिकित्सा को उद्योग बना देने से इस पेशे में आंतरिक रूप से निहित सेवा भाव के खत्म हो जाने की आशंका से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है।

मानव अंगों की तस्करी इस उद्योग का एक और स्याह पक्ष है। विकसित देशों में मानव अंग आसानी से उपलब्ध नहीं हैं, जबकि भारत जैसे गरीब देशों में पैसों के लालच अथवा ताकत के प्रभाव का प्रयोग कर गरीबों के उत्पीड़न की आशंका बराबर बनी रहती है। इतना ही नहीं, चिकित्सा पर्यटकों की बेहतर क्रय क्षमता सरकारी अस्पतालों से बेहतर डॉक्टरों को दूर कर देगी, जिससे आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को बेहतर चिकित्सकीय सुविधाएं नहीं मिल पाएंगी। पर्यटन का यह क्षेत्र निजी अस्पतालों को बढ़ावा देगा, जिससे आने वाले समय में चिकित्सा के क्षेत्र में पहले से ही मौजूद विसंगतियां और बढ़ेंगी। चिकित्सा पर्यटन से हुए फायदे का लाभ आम भारतीय को बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएं मुहैया कराने में किया जा सकता है, लेकिन जरूरत इसके लिए दीर्घकालीन नीति बनाने की है। क्या सरकार इसके लिए तैयार है? ❑